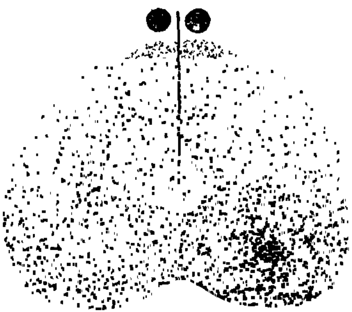
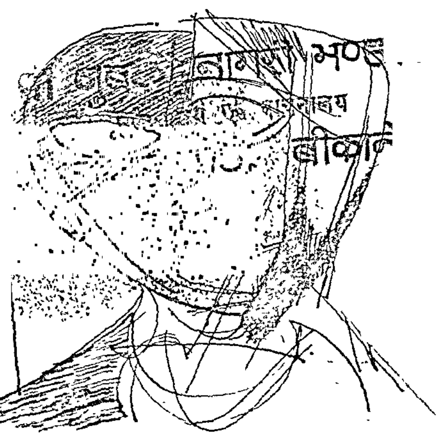
निर्मल कुमार



पूर्वोदय प्रकाशन

नई दिल्ली-११०००२

आरुणी

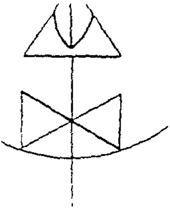


मूल्य : १०.०० (दस रुपये)

 प्रथम सस्करण : , १९७८
प्रकाशक : पूर्वोदय प्रकाशन, ७/८, दरियागज, नई दिल्ली-२
मुद्रक : साधना प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

AARUNI (Novel) by Nirmal Kumar Price Rs 10 00

निर्मला को



तपोवन लौटने में बहुत देर हो गई थी आरुणी को। उसे यह भी पता नहीं था कि गायें अभी वन ही में थीं या लौट आई थीं। आज फिर खेल में वह सब भूल गया था। बन में भील बालक भी पशु चरा रहे थे और गेंद खेलते-खेलते उनके साथ बहुत दूर निकल गया था। खेल में वह इतना मग्न हो गया था कि कब संध्या आई कब शरद की रात्रि चुप-चुप वनों, तड़ागों और बस्तियों पर फैल गई उसे पता नहीं चला। उसे जब होश आया तो सबसे पहली चीज जिसने हृदय पर चोट की वह था अंधेरा। एक भयानक दूत की तरह वह अंधेरा उसे याद दिला रहा था पिता के क्रोध-भरे लाल नेत्रों की। कल्पना में एक बिजली की तरह उनका कुपित मुख-मंडल उसकी आंखों के आगे उभरा। वे ऋषि थे और उनका क्रोध असीम था। उन्हें आरुणी के खेलने से बड़ी चिढ़ थी। उनका ख्याल था कि उन भील बच्चों के साथ खेलकर आरुणी बिगड़ जाएगा, असभ्य हो जाएगा। तपोवन में खेलना मुश्किल था क्योंकि वहां का वातावरण इतना गंभीर था कि वहां जरा खुलकर हंसते हुए भी ऐसा लगता था मानों उत्पात कर रहे हों। अन्य ऋषि कुमार बहुत धीरे-धीरे बोलकर गंभीर से खेल खेल लेते थे। पर आरुणी की धमनियों में न जाने कैसा रक्त था कि खुलकर खेले बिना, बेरोक शोर मचाए बिना, निरंकुश खेले बिना उसे चैन नहीं मिलता था। अतः वह वन को चला जाता था। गायों को चराने का काम वह खुशी-खुशी अपने जिम्मे ले लेता था क्योंकि इस बहाने वह वन में खुली सांसें ले सकता था पशुओं और पक्षियों के कलरव में अपने हृदय के सारे शोरों को मिला सकता था। जोर-जोर से गा सकता था और वहां भील बालक थे, काले रंग के शर्माते हुए से, बहुत विनम्र बालक। वे उसका बहुत सम्मान करते थे क्योंकि वह आर्य था और उसके केश और वस्त्र ऋषिकुमारों वाले थे। वह उनके लिए पूज्य होते हुए भी उनके साथ खेलता था एक साधारण

मित्र की तरह। वे झगड कर एक-दूसरे की चीजें खा लेते थे। मार-पिटाई भी होती तो बराबरी के स्तर पर। उनमें कोई भेद नहीं था। वह संस्कृत जानता था परन्तु उनकी निरक्षरता पर हसता नही था। वह उन्हें बहुत प्रिय था और वे उसे बहुत प्रिय थे। वह उनके त्योहारों पर ऋषिकुल से छुपकर अवश्य जाता था। एक बार पूरी रात वह उनके आदिवासी नृत्य मे रहा था।

आरुणी के पग तपोवन मे प्रवेश करते-करते जवाब दे गए। कुटियों के पास से निकलते हुए उसके कानो में मंत्रोच्चारण की ध्वनि टकरा रही थी। पर वह उसे सुन नहीं रहा था। जैसे स्थिर ताल मे पत्थर फेंकने से लहरें दूर-दूर तक फैलने लगती हैं उसी तरह उसके सुन्न पडे मस्तिष्क में वे मंत्रों के स्वर लहरें छोड़ रहे थे, जो भयभीत कर रही थी उसे। उसे अपने पिता से बहुत भय लगता था। वे उसे कितनी ही बार खेलने पर पीट चुके थे। शायद उनकी मार इतनी तेज नही थी क्योंकि कभी भी उन्होंने आरुणी को इतना नही मारा था कि उसकी हड्डी टूट जाए या खून निकल पड़े। मगर जिस भयंकरता के साथ वे उस पर टूटते थे वह छोटेसे आरुणी के लिए प्रलय से कम नही था। वह आतंक उसकी नस-नस में समा गया था।

दीये के प्रकाश मे एक दंड अपने पास रखे उसके पिता बैठे थे। उसे देखते ही गरज कर बोले, "कहा गए थे ? गायें कहां हैं ?" उत्तर के लिए आरुणी का कंठ सूख चुका था। उसे चुप देख क्रोध उफन पड़ा और आरुणी पर डंडे बरस पड़े। उसे अकेले वन भेजा गया गायें ढूंढ लाने के लिए। रात को वन बहुत डरावने लगते थे, छोटे आरुणी को। उसकी पूरी आत्मा भय मे फँस जाती थी। वह "ईशावास्य मिदं सर्वम्" का उच्चारण करता हुआ वन मे घुसा। परंतु राक्षसों का, दैत्यों का मुकाबला वह कैसे करेगा ? उसका भयभीत मन बोला—वह ऋषि-कुमार है, कोई राजकुमार नहीं। वह शस्त्र चलाना भी नहीं जानता।

उस रात गायों को वह लौटा तो लाया परंतु अंधकार मे किए इस विचरण ने उसकी आत्मा को पंगु बना दिया। उसके पिता ने उसे अंधकार में सजा के तौर पर भेजा था मानो उनके द्वारा दिया दंड काफी नहीं था और बाकी दंड वे अंधेरे से दिलाना चाहते थे। पिता जब भी कुपित होते थे वे आरुणी को अंधेरे प्रकोष्ठ मे अकेले जाने की सजा देते थे। इससे बालक आरुणी के कोमल मन को अंधकार पिता से भी बड़ी एक शक्ति लगने लगा था जिसके पास वे उसे भेजते थे जब उन्हें

उसे मार से भी बड़ी सजा देनी होती थी। आरुणी का मन सोचने लगा, जरूर अंधेरा बहुत शक्तिशाली है और भयानक प्रेतो, राक्षसों, और पशुओं से भरा है, जो उसे खा जाएगे। वह अंधेरे से डरने लगा। अंधेरे मे साहस के साथ घुसकर उससे सूर्य की तरह पुनर्जन्म लेना है, यह बात आरुणी का मन सोच भी नही सकता था। "पितृ देवो भव" का जाप करने वाला बालक जो पिता को देवता समझता था। अंधेरे को देवता से भी शक्तिशाली समझने लगा। स्वयं ईशान् अंधेरे से नहीं बचा सकते। मनुष्यों को अंधेरा अकेले कर-कर करके निगलता है। तरह इसी के भयो ने उसकी आत्मा को बचपन ही में पंगु बना दिया।

× × ×

दंड के भय से आरुणी ने तपोवन के बाहर जाना कम कर दिया और एक समय आया जब बाहर जाना बिलकुल छूट गया। आरुणी तपोवन मे ही ऋषिकुमारों और ऋषिकन्याओं के साथ खेलने लगा। उन्ही की तरह चुप-चुप बिना शोर किए और अवसर घने झुरमुटो मे। उसके खेल में मंजरी उसके साथ रहने लगी।

उस रात एक ऋषि की मृत्यु हो गई थी। और ऋषिजन शव को आधी रात के बाद दाह-क्रिया हेतु ले गए। ऋषि-पत्नियां शुद्धि कार्यों मे लग गई थी। आरुणी अपनी माता के कक्ष में शैय्या पर अकेला पड़ा था। उसके भाई-बहन सो रहे थे। तभी मंजरी कुटिया में आई और बोली, "आरुणी! आरुणी! मुझे डर लग रहा है। मैं तेरे पास सो जाऊं।"

"हां" आरुणी ने कहा। वह स्वयं डर रहा था। मंजरी नौ वर्ष की थी और आरुणी तेरह वर्ष का। ऊषा बेला में आरुणी की आंख खुली तो उसे बहुत क्रोध आया देखकर कि उसके अधोअंग खुले थे और मंजरी आपत्तिजनक रूप से उसके निकट थी। उसे जागा देखकर मंजरी ने आंखें मूंद ली और सोने का बहाना किया। आरुणी शैय्या से उठा और उसने सीधे जाकर माता को सब कुछ बता दिया। मां ने कहा, "चुप-चुप ऐसी बातें नही करते" और उनके चेहरे पर एक विकृत भाव आया जिसे वह नही समझ सका।

इसके बाद मंजरी आरुणी से कटने लगी। वह अपने को अपराधी समझने लगी। उसके आगे आते ही अपमान और अपने प्रति क्रोध में उसकी आंखें झुक जाती। अबोध बालिका नहीं समझ सकी कि किस कौतूहल के वश होकर उसने ऐसा किया था। उसका कोई अभद्र उद्देश्य नहीं था। उसने पशु-पक्षियों को तपोवन में इस मुद्रा में देखा था। एक प्रेरणा उसके हृदय में आरुणी को अपने पास एकांत में पड़े देख जगी थी कि वह भी ऐसा करके देखे। यह कितनी लज्जा की बात थी। आरुणी सोचता होगा कि वह इसी उद्देश्य से उसके पास गई। यह पाशविक कर्म अपने आप ही उससे हो गया था और इस एक कर्म ने उसकी आत्मा को उस अल्प आयु में ही यौनज्ञान से भरना शुरू कर दिया था। न जाने कौन से द्वार खुल गए थे जहां से गुपचुप यौन रहस्य उसकी बाल आत्मा में घुसने लगे थे। बिन कुछ किए ही वह अभागिनी ऐसा महसूस करने लगी थी जैसे ये अनुभव वह पा चुकी थी। इस आत्मग्लानि से बचने के लिए वह उपवास करने लगी। मगर अपराध की अनुभूति उसके हृदय से दूर न हुई।

उधर आरुणी के मन में विचित्र प्रतिक्रिया हुई। जिस घटना ने उस रात उसे क्रोध से भर दिया था उसका कोई आकर्षण बाद में उसे आकर्षित करने लगा। उसकी इच्छा होने लगी कि मंजरी फिर वही क्रिया दुबारा करे। ये जातीय पाप थे जो दोनों निर्दोष किशोरों के मन को भयंकर सर्पों की तरह जकड़ बैठे थे। आरुणी अपनी इस अशोभनीय इच्छा पर लज्जित होता। उसका हृदय कहता यह पाप है। परंतु न जाने कैसा ताप उसकी आत्मा को विह्वल् कर देता।

आखिर एक रात उसे अवसर मिला। मंजरी तेरह वर्ष की हो चुकी थी। उस रात उसकी मां घर नहीं थी और मंजरी को सोने के लिए आरुणी की मां अपने कक्ष में ले आई थी। आरुणी का कक्ष मां के कक्ष के बराबर में था। अर्ध रात्रि को वह द्वार हटाकर मां के प्रकोष्ठ में घुसा और सोती हुई मंजरी के पास लेट गया। फिर उसके अधोवस्त्र हटा कर उसने बेखबर सोती हुई मंजरी को बाहों में ले लिया। मंजरी ने करवट ले ली। उसके जगने के भय से आरुणी ने उसे छोड़ दिया। तभी जोरों से बिजली कड़की और उसके प्रकाश में आरुणी की आंखों ने देखा सौंदर्य का वह मादक रूप जो हमेशा-हमेशा के लिए उसके हृदय में बस गया।

बिजली की कड़क से मां की आंख खुल गई। आरुणी उठकर जाने की चेष्टा कर ही रहा था कि मां बोली, 'कौन है ?' आरुणी के घुटने जैसे टूट गए। 'आरुणी'

मां फिर बोली और आरुणी का शरीर जैसे मंत्र-शक्ति के द्वारा वहीं जड़ हो गया। वह हिल-डुल न सका। मां पास आ गई और वह दृश्य देख दुःख, ग्लानि और क्रोध के अतिरेक में उसने सिर पीट लिया। बहुत धीमे स्वर में वह बोल रही थी इस भय से कहीं मंजरी न जाग जाए। मगर उसका एक-एक शब्द आरुणी के मन में गले शीशे की तरह पड रहा था। "निर्लज ! तूने ऋषिकुल को कलंकित कर दिया। इतनी ही नीचता थी तो कहीं और जा सकता था। इस ऋषिकुल की कन्याएं क्या तेरे लिए बहनें नहीं हैं ? दुष्ट ! तूने मान-मर्यादा, धर्म सबको एक ही रात में भंग कर दिया।"

हां, धिक् ! धिक् ! एक तूफान लगा था आरुणी के मस्तिष्क में। मानो अनेक परमाणु बन उसकी आत्मा बिखर गई थी। न वह कुछ सुन सकता था, न कह सकता था। और उसके ऊपर मां की आकृति इस तरह झुककर फुस-फुसा रही थी जैसे प्रलय के बाद नष्ट हुई सृष्टि पर प्रलय के बादल झुके हों। केवल एक ठंडी, बेधती, सन्नाटों से बनी धारा उसके मन में गिर रही थी।

× × ×

उसके बाद आरुणी के लिए मां को मुंह दिखाना असंभव था। सुबह होने से पहले उसने तपोवन छोड़ दिया। मां जानती थी वह क्यों चला गया। वह जानती थी वह हमेशा के लिए चला गया। एक अंधेरी दीवार की तरह कोई दर्द इस बात पर उसकी कोख में उठने को हुआ परंतु शीघ्र ही मिट गया। और कोई भी रास्ता नहीं था। पिता को आश्चर्य हुआ आरुणी क्यों बिना कुछ कहे चला गया। अब तो उसने शरारतें भी छोड़ दी थीं और अच्छे ऋषिकुमारों की तरह विद्या-अध्ययन करने लगा था। हो सकता है वह तप के उद्देश्य से चला गया हो। पिता चिंता करना व्यर्थ समझ अपना और भी समय ब्रह्म-ध्यान में लगाने लगे।

आरुणी ने नगर में आकर शिक्षा देने का व्यवसाय अपना लिया। बहुत से धनाढ्य परिवारों के बच्चे थे जिन्हें वे अपने से अलग करके तपोवन नहीं भेजना चाहते थे। उनके लिए शिक्षा का प्रबंध घर पर ही कर दिया जाता था। ऐसे परि-

चारों ने मेधावी आरुणी का खूब स्वागत किया। आरुणी की आत्मा हमेशा ही सत्य-ग्राही ही रही थी। उसने सत्य के लिए अपनी इच्छाओं, अपने स्वार्थ सभी को कुचल देने का गुण अपने वंश से पाया था। उसकी धारा-प्रवाह बोलने की शक्ति, अकाट्य तार्किकता, दर्शन, संगीत, नाट्यकला, साहित्य में गहन दृष्टि ने उसे शीघ्र ही नगर के एक अत्यंत ज्ञानी और सरल व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध कर दिया। आरुणी अपने ज्ञान और साधना को बढ़ाता रहा। धीरे-धीरे उसकी काव्यकला की प्रशंसा होने लगी। आरुणी को लगा कि उसका मन तपोवन के वातावरण में घुटता रहा था। नगर का विस्तृत अनेक जीवन-धाराओं से बना जीवन उसे अपने लिए बहुत उपयुक्त लगा। उसे सबसे अधिक खुशी होती थी महिलाओं के सामीप्य से ? यहां की महिलाएं दूसरी तरह की थी। वे कोमल थी। उनके नेत्र कटाक्षों से भरे थे। काले भौंरों की तरह जहरीली परंतु शहद से भी मीठी उनकी चंचल आंखें थीं। वे कठोर निःस्पृह और विरक्त नहीं थीं। वे तपोवन की ऋषि-पत्नियों और कन्याओं की तरह नीरस और कठोर अनुशासनबद्ध नहीं थी। परंतु महिलाओं के आगे उसे बहुत लज्जा आती थी और अक्सर उसके मुख से बोल भी नहीं निकलते थे। उसे पता नहीं था कि उसकी इस लज्जा ने नगर की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी रम्भा के हृदय को आलोड़ित कर दिया था। वह उसके भवन के सामने वाले गृह में एक बालक को पढ़ाने रोज दोपहर को जाता था। वह समय रम्भा के लिए फुर्सत का होता था। वह अपने झरोखे में बैठी दासियों से कभी केशों में तेल लगवाती होती थी तो कभी वीणा पर सुर-साधना करती होती थी और कभी सखियों के साथ बैठी अपने हाथों से अपनी वेणी के लिए फूलों की माला गूंथती होती थी। कभी हास-परिहास मे सखियो के साथ समय काटती होती थी।

एक दोपहर जैसे ही आरुणी अपने शिष्य के घर पहुंचा, धीरे-धीरे बादल घिरने लगे। अनेक दिनों तक भीषण ताप से त्रस्त सुंदरी रम्भा चंदन से वक्ष को लेपकर भवन के आंगन में बने कुंज मे अपनी दोपहरी काट रही थी। प्रसिद्ध शिल्पकार एवं वाटिका विशेषज्ञ रवि वर्मन ने वह छोटा-सा कुंज अपनी प्रेयसी के लिए बनाया था। प्रसिद्ध था कि नर्तकी होते हुए भी रम्भा ने शरीर से केवल रवि वर्मन को ही अपनाया था। रोज संध्या को दीप जले वह अपनी प्रेयसी से मिलने आता था और सूर्य रश्मियों के वातायन छूने से पूर्व लौट जाता था।

बादलों ने उमड़-घुमड़ कर ऐसा अंधेरा कर दिया कि पढ़ाना असंभव हो

गया। आरुणी अपने शिष्य शशांक के साथ ऊपर छत पर आ गया और देखने लगा बादलों के विप्लव को। श्याम, नीललोहित, पीत, धूमिल कितने ही रंगों के बादल फुर्तीले अजगरों की तरह आकाश पर चढ रहे थे। मानो नाग देवताओं ने आकाश पर अचानक हमला कर दिया हो। सावन की बयार तेज हो गई और फिर और तेज और तब तेज वर्षा होने लगी। आरुणी वर्षा मे भीगने लगा। वहीं उसकी आंखें पहली बार रम्भा से टकराईं। अपनी लाल-लाल हथेलियों से पानी की बौछार को मुंह पर पड़ने से रोकती हुई अल्हण युवती हंस रही थी। फुहारों से भीगकर उसके मृग-नयन कुछ शिथिल और चमकीले हो गए थे। घने बादलों से मंडित उस दोपहर के अंधेरे में उसके दूध से खिले दांत देख आरुणी को सारसों की वह पंक्ति याद आई जो उसी सुबह उसने आकाश में उड़ती देखी थी। उसके हृदय के पिंजरे को खोल जैसे कोई मैना उड़ गई। चंपा की तरह निर्दोष गौरवर्ण वाली छरहरी सुंदरी पानी की मोटी-मोटी बूंदों की तेज मार से पग नहीं संभाल पा रही थी।

आरुणी से आंख मिलते ही जैसे रम्भा के रक्त की गति एक क्षण को रुक गई। अपनी लाल हथेलियां उसने आंखों के आगे कर लीं। परंतु उनकी आड़ में पलकें इस तरह फड़फड़ाने लगी जैसे उड़ने को उत्सुक किसी नन्हें पक्षी के डैने भीग जाने के कारण उड न पा रहे हों। नेत्रों के कोनों से हथेलियों की ओट को लांघकर आने उस हंसते प्रकाश ने आरुणी के हृदय को मानो किसी मदिरा से भर दिया।

रम्भा की आंखों को भी अरुणी का प्रखर-बुद्धि की आभा से चमकता मस्तक, लज्जा से कोमल हुआ मुख खूब भाया। एक शिशु-जैसी सरलता थी आरुणी के मुख पर। उसकी बडी-बडी आंखों मे विस्मय और भय था। मानो सौंदर्य एक तीर था जिससे आहत होकर पक्षियों की तरह वे नेत्र भयभीत से कहीं भाग जाना चाहते थे। एक बुद्धिमान पुरुष में नारी के गुणों का इतना सफल और आकर्षक प्रकटन रम्भा की आंखों ने पहली बार देखा था। इस तरुण की गंभीरता में पौरुष था, इच्छा शक्ति थी, शालीनता थी। यह सही था कि उसका शरीर सुगठित और बलवान नहीं था। वह दुर्बल परंतु नैसर्गिक तनाव से खिंचा शरीर रम्भा को एक धनुष-जैसा लगा जिस पर उसकी आत्मा तीर की तरह चढी हुई थी। मानो वह तरुण उत्सुक था किसी ओर भी अपनी आत्मा को तीर की तरह फेंक देने को। ऐसा व्यक्ति जो आत्मा को तीर की तरह किसी ओर भी फेंकने को

व्यग्र है कितना निलिप्त और स्वार्थविहीन होगा। उसका क्या भरोसा। जरा-सा सहारा पाकर वह किसी भी सुंदरी के चरणों में अपनी आत्मा चढ़ा देगा। बुद्धिमत्ता और मूर्खता का, सरलता और भय का, विद्रोह और सलज्ज आज्ञाकारिता का ऐसा अपूर्व समन्वय उसने पहले किसी पुरुष में नहीं देखा था। रवि वर्मन के प्यार में एक निश्चितता थी एक तराशी मूर्ति जैसी। उसका पौरुष बहुत आकर्षक था और वह एक वीर-योद्धा भी था जिसने मालवा और कंगार के विरुद्ध लड़ते हुए अपूर्व वीरता का परिचय दिया था। मगर उसके प्रेम में ये अंधेरों के भय और आकर्षण न थे जो इस युवक की आंखों में थे।

रम्भा स्वयं केवल चौबीस वर्ष की थी। परंतु इस असहाय, विलक्षण पुरुष को पाने की लालसा ने उसमें त्रिया-चातुर्य जगा दिया। एक सम्मोहक मुसकान उसके होंठों पर खिंच आई जैसे दो लाल सजीव हो उठे हों। इतनी दूर से भी उनका हर कंपन जैसे आरुणी के नेत्रों के आगे नहीं हृदय के निकट हुआ था। एक तेज भय ने उसके पेट की अंधेरी गहराइयों से उठ उसे जकड़ दिया और वह दूसरे ही क्षण भाग खड़ा हुआ। नीचे जाकर उसने सांस ली। उसे भागता देख रम्भा की खिलखिलाती हंसी जैसे उसके पीछे-पीछे दौड़ती आई थी। वह वहां भी न रुक सका और सीधा अपने घर आ गया।

आत्मा रूपी तीर चल चुका था। नीचे वारजे में केशों से पानी निचोड़ती सुंदरी रंभा जानती थी वह तीर उसने हाथों से थाम लिया था।

× × ×

दिन बीतने लगे। आरुणी और रंभा का प्रणय दिन पर दिन और गहरा होता चला गया। रम्भा की गंध आरुणी के अंगों में बस चुकी थी। वह रम्भा का दुःख भी जान गया था। वह एक शिशु चाहती थी जो रवि वर्मन उसे नहीं दे सका था। अपनी सूनी गोद का रम्भा को बहुत दुख था। वह चाहती थी कि आरुणी से उसे एक पुत्र हो जो उसकी तरह गहरी आंखों वाला हो, जिनमें वनों के रहस्य, भय और उत्कंठाएं हों। एक-दो बार उसे आरुणी से गर्भ रहा, परंतु कुछ ही महीनों में गर्भ खाली हो गया। उसके भाग्य में मानो संतान का सुख नहीं था।

परंतु बहुत मधुर और पूर्ण था वह साथ जो उसने आरुणी को दिया था। उसका अकेलापन चला गया था। पूरी-पूरी दोपहर रम्भा आरुणी के गुप्त प्रकोष्ठ में, एक मद्धम दीप के सुनहरे प्रकाश में, अपनी सौंदर्य-राशि बिखेरती रहती थी। आवरणविहीन उसका विपुल सौंदर्य मानो अग्नि की एक शिखा थी जो आरुणी के हृदय में जलती थी और फिर भी एक क्षण को भी वह उस जलन से मुक्त नहीं होना चाहता था। प्रेम की कलाओं में पारंगत रम्भा ने आरुणी को शरीर के सभी सुखों से परिचित कराया। हर अंग की अलग-अलग मदिरा आरुणी की आत्मा को विभोर करती रही। परंतु दो विचित्र बातें थीं जो कभी-कभी आरुणी को भी अजीब-सी लगतीं थीं। एक तो आरुणी रम्भा को इतना चाहते हुए भी उसके साथ में ऊब जाता था एक ही दोपहर में। सांझ ढलते-ढलते उसकी इच्छा होती थी कि अब रम्भा लौट जाए। उसके मिलने के बाद उसमें एकांत की इच्छा जागती थी। दूसरी विचित्र बात यह थी कि उसे रवि वर्मन से कभी भी ईर्ष्या नहीं हुई। कितनी ही बार उसने स्वयं रवि वर्मन को संध्या के समय रम्भा के महल में जाते देखा था, दोनों को साथ-साथ भीतरी प्रकोष्ठ में जाते देखा था। परंतु उसे कभी भी ईर्ष्या नहीं हुई। वह बस इतना चाहता था कि रवि वर्मन उसके प्रणय को न जान पाए। रम्भा से मिलते हुए उसे कभी ऐसा नहीं लगा कि वह शरीर जूठा था और उन अंगों में किसी अन्य पुरुष की महक रची हुई थी। नित फेनिल चलते झरने की तरह चिर-नूतन रम्भा थी उसकी आंखों में। जो दिन बीतते जाते थे सुन्दर मोतियों की तरह न जाने किस अंधेरे में खो जाते थे। उन्हें ढूंढने को सजाकर रखने को उसका मन ही नहीं होता था। जीवन बहुत उदार था। रोज रम्भा का रूप एक नई मदिरा बन उसकी आंखों को भरमाता। उसका महकता नारीत्व उसे एक अगम्य रहस्य की तरह रोज पुकारता और बाहों में बाहें डाले मानो वह उस नारीत्व रूपी सघन-वन में किसी बौराए कस्तूरी-मृग की तरह डोलता, और भीतर की असीम गहराइयों में जहां उसे अपने पौरुष का पता न रहता। धीरे-धीरे उसका पौरुष ही मानो रम्भा के नारीत्व में खो गया। केवल रम्भा थी। परंतु आरुणी का पौरुष खोया नहीं था। वह एक पुनर्जन्म लेने की तैयारी कर रहा था नारीत्व से। नारीत्व जो पौरुष को डुबाने वाला भंवर कहा जाता है, वही नारीत्व उसके पौरुष को पुनर्जन्म दे रहा था। एक बार निगल कर वह उसे अमर कर रहा था। वह नारी की उदारता थी। रम्भा का नारीत्व स्वयं नष्ट हो रहा था उसके

पौरुष को निगल कर, क्योंकि वह व्यग्र थी ऐसे अनोखे पौरुष को बचाए रखने के लिए। रम्भा सोचती, क्या आरुणी अर्धनारीश्वर का अवतार है? वह पुरुष होकर भी नारी के कितने निकट है। उसने एक बार भी यह अनुभव नही दिया कि वह अन्य था, कि वह नारी थी और वह पुरुष था। वह अनन्य लगा था। केवल तब जब उनके परिचय प्रगाढ होने लगे थे तब उसके नारीत्व ने उसके धड़कते पौरुष के आघात अपने हृदय पर महसूस किए थे जो आह्लादमय पीड़ा से तन की डाल-डाल को भर देते थे। पूर्ण जीवन जैसे रम्भा के तन से किसी बेल की तरह लिपट जाता था।

एक अनोखी बात यह थी कि आरुणी और रम्भा बहुत अधिक वार्तालाप नहीं करते थे। घंटों वे यों ही पास-पास बैठे रहते या एक ही शैय्या पर घने पर्दों से अधियाये कमरे में एक रोमीय दीप के सुनहरे प्रकाश में पड़े रहते। जब शिथिल होते तो भी दोनों के अनुरक्त मन प्रणय-क्रीड़ा में लगे रहते। घने कुन्तलों से ढके उसके सुनहरे कधे बहुत क्षीण थे। पीन पयोधरो के नीचे विशाल जघन स्थलों पर रत्न जटित करधनी देवालय मे शिल्पित अपसराओं की स्मृति जगा देती थी। घुटने के नीचे उसकी टांगें बंद कमल सदृश थी और चरण हंसों की तरह चंचल थे। उसकी अपूर्व सौंदर्य छटा पूरे प्रकोष्ठ को अलोकित किये रहती थी। एक क्षरन मानो सृष्टि मे लगी थी केसर और पराग की। एक ऐसी ही सुनहरी आभा मन के सभी अंधेरे कोनों को फूलों से खिली घाटी में बदल गई थी।

"तुम मुझे बहुत प्यारे हो आरुणी! यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुमसे भी मुझे पुत्र न मिल सका।" रम्भा के नेत्र दु ख से और विशाल और काले लगने लगे।

आरुणी के पास उत्तर नही था। उसने उसे अपने निकट खीच लिया और कुछ देर वह उसके हृदय से लगी सिसकती रही। "कल रात मैंने एक सपना देखा।" वह बोली, "तुमने मुझे एक मंजूषा दी। मैंने वह मंजूषा खोली और उसमें एक सुदर बालक था। बिलकुल तुम्हारे जैसा।"

आरुणी भी उसके साथ मुसकराया। मगर उसे अच्छा नही लग रहा था। पुत्र की इस तीव्र कामना को वह समझ नही सकता था। यह उसे रम्भा के चरित्र की संकीर्णता लगती थी। ये असंख्य बालक जो पृथ्वी पर खेलते हैं क्या इन्हें वह अपना पुत्र नहीं समझ सकती? क्या उसकी आत्मा में प्रकाश नही है? क्या सचमुच वह इतने अंधेरे में है? उसे आश्चर्य हुआ कि इस नारी को वह चार

वर्षों से प्यार कर रहा था और अभी तक उनकी आत्माएं इतनी अपरिचित थी। वहां प्रकाश है या अंधेरा, वह अपरिचित था। वह क्या अपने रक्त को, अपने रज को और अपने प्रेमी के ओज को ही सत्य समझती थी ? क्या वह सिर्फ उसी को अपना पुत्र समझ सकती है जो उसके रज से बने, उसके गर्भ से जन्मे। चिर प्रसविनी, सबकी मां, प्रकृति क्या उसके नारी शरीर मे नही जगी ? उस क्षण रम्भा उसे एक बहुत ही तुच्छ, मामूली नारी लगी। उसकी आत्मा मे एक ताप उठा कैसे वह रम्भा को इस सकीर्णता से उभारे। उसे एक खिन्नता भी हुई कि इतने वर्षों के सपर्क से भी रम्भा मे ज्ञान की किरणें नही फूट सकी। उसकी इच्छा हुई कि वह विशाल हंस बन जाए और अपने पंखों में रम्भा को उठा ले और उड़ता-उडता सूर्य तक पहुंच जाए। वह प्रखरताप उसे नहीं डरा सकता। उसे लगा वह उसे भेद कर उस प्रभा मंडल मे प्रवेश कर जाएगा। वहां रम्भा की यह संकीर्णता जल जाएगी। वह एक नवीन जीवन पा लेगी।

मगर रम्भा उसकी दार्शनिक बातों को नही समझ पाती थी।

"देखो रंभा ! इन छोटी तुच्छ कामनाओं को छोड़ दो। प्रेम के इस आलोक में मेरे साथ उर्ध्व दिशा मे उड़ो। मैंने ऋषिकुल मे यही सीखा है। हमेशा उर्ध्व दिशा मे उडो। इस तरह उड़कर हम पाप से मुक्त रहेंगे। शरीरों का मिलन भी मुक्ति दे सकता है यदि वास्तव में हम प्रयत्नशील हों। दृढ़ संकल्प करो, मेरे हाथ मे हाथ दो और आओ, मैं तुम्हें सूर्य तक ले चलूं। वहां चिर-यौवन और चिर-कौमार्य का अक्षय स्रोत है। उसे पीकर तुम हमेशा-हमेशा के लिए कुमारी बनी रहोगी। तुम्हारा यौवन और सौंदर्य कभी विदा नहीं होंगे।"

"तुम कैसी बातें करते हो ?" रम्भा बोली, "कौन सी चीज है जिस पर समय की छाप नहीं पड़ती। काल के पहियों के नीचे सब कुचल जाता है मैं भी कुचल जाऊंगी, तुम्हारे लिए मैं नही कहती चूंकि मेरी जीभ जलती है। मगर सत्य से हम भाग तो नहीं सकते। क्यो कल्पनाओ मे उड़ते हो ?"

"कल्पना नहीं रम्भा," आरुणी बोला, "यह सत्य है। वेद कहते हैं काल की गति सिर्फ आगे ही की ओर नही है, पीछे की ओर भी है। जो काल से पुनर्जन्म पा लेते हैं उन्हें काल मिटाता नही। स्वयं यह शरीर उस आभा को पा सकता है जो काल से आगे है। काल के आगे जो है उसे भी योगी पीछे छोड़ देते हैं। स्वयं मेरे कुल में प्र-पितामह चन्द्रबाहु ने अपना यौवन काल से पुनः प्राप्त किया था

जब वे सौ वर्ष के हो चुके थे।"

"हा! हा! हा।" खनकते कंकड़ों जैसी हंसी रम्भा के कंठ से फूटी। "तुम भी इन किवदंतियों में विश्वास करते हो?"

"किवदंती नहीं आर्ये" आरुणी के नेत्र विश्वास में चमके, "यह सत्य है। इतना ही सत्य जितना यह नगर है, यह प्रासाद है। वे पुन: किशोर हो गए थे। काल ने उन्हें लौटा कर उसी गति में पहुंचा दिया था।"

रम्भा कुछ कौतूहल, कुछ विस्मय में उसकी बातें सुनने लगी। उसमें बहस करना उसे व्यर्थ लगा। हो सकता है वह सही हो। ऐसा ही होगा, वह इन बातों को समझ नहीं सकती। आरुणी एक योगी है। एक मूक प्रशंसा और प्रेम उसकी आंखों में उठा, जिसके स्पर्श से आरुणी का ऊपर दार्शनिक ऊंचाइयों पर जाता हृदय रुक गया। उसने रम्भा को प्रगाढ़ आलिंगन में कस लिया और उनके अधर उस स्वर्ग को खोजने में निमग्न हो गए जो आज भाग्य ने स्वयं उनके द्वार पर सजा रखा था।

उस रात आरुणी का मन उद्विग्न रहा। उसे रह-रह कर प्र-पितामह चन्द्र-बाहु की याद आती रही और वह सोचता रहा, वह कौन सी विलक्षण विधि होगी जिसके सहारे वे कालजयी हुए थे।

एक नई उधेड़-बुन आरुणी के मन में लग गई थी। कितने ही महीने बीत गए इस नई साधना में। उसे कालजयी होना है। कहते हैं कि जो कार्य पूर्वजों में से कोई कर लेता है वह संतान के लिए काफी आसान हो जाता है। अगर कोई दृढ़ संकल्प कर उस पथ पर बढ़े तो पूर्वज द्वारा खोजा गया मार्ग स्वत: ही उसकी आत्मा के आगे अपने को फैला देता है। आरुणी इसी भरोसे पर चल निकला। महर्षि पातंजली ने भी तो कहा है कि जो सच्चे साधक हैं उनके सहस्त्रार पर दिव्य ऋषिजन आकर उनका मार्ग निर्देशन करते हैं।

वह दो बार एक योगी और एक ऋषि से मिला। मगर इस विषय पर उनसे वार्ता करके उसे खिन्नता ही मिली। उन्होंने उसे राय दी कि इन विभूतियों और सिद्धियों को पाने की अपेक्षा वह अपनी आत्मा के मोक्ष का यत्न करे। यह उसके लिए अधिक श्रेयस्कर होगा। आरुणी को लगा वे या तो उसे नहीं समझ सकते या फिर वही उन्हें नहीं समझा सकता। यह प्रश्न उसके लिए कोई सिद्धि प्राप्त करने का नहीं था। इससे उसकी आत्मा का सारा भविष्य जुड़ा था। जब तक

आत्मा कालजयी नहीं होगी उसका सोचने का ढंग काल से प्रेरित रहेगा। वह स्वतंत्र नहीं होगा, वह सत्य को नहीं जान सकेगा, क्योंकि काल जो उसे सुझाएगा वही वह सोचेगा और काल बड़ा निरंकुश उपहास करता है मनुष्य-जीवन का। वह उसे सत्य के चारों ओर घुमाता रहेगा और कभी भी सत्य में प्रवेश नहीं करने देगा।

अतः आरुणी स्वयं अपना गुरु बना। अपनी आत्मा के ही निर्देशन पर वह चलने लगा। सबसे पहली बात जो उसकी आत्मा ने सुझाई वह थी अपनी स्मृतियों, अनुभवों, विचारों सभी को मस्तिष्क से बाहर निकाल दो। ये सब काल के विभिन्न रूपांतर हैं। ये तू नहीं है। ये जाले है। ये वह धूल है जो तेरी आत्मा के रजत प्रकाश को ढके हुए हैं। स्वय अपना प्रकाश बन। तेरा प्रकाश तेरी आत्मा ही है।

आरुणी की सारी आध्यात्मिक शक्तियां इन सबको मस्तिष्क मार्ग से बाहर निकालने में लग गईं। आज तक के अनुभव, विचार, इच्छाएं, भावनाएं सबको उसकी आत्मा जैसे उसके जीवन रूपी घर के कोने-कोने से समेट कर मस्तिष्क की ओर धकेलने लगी। धीरे-धीरे उसे लगने लगा जैसे उसके सारे अनुभव, विचार, इच्छाएं, भावनाएं एक दूसरे में इस तरह उलझ गई है जैसे ऊन का गोला और सब मस्तिष्क की ओर जा रही है। उसका सारा व्यक्तित्व मस्तिष्क में आ गया है और बुरी तरह उलझ गया है।

× × ×

और तब एक दिन राज्य की नजरें आरुणी पर पड़ी। राजा के कानों तक उसकी विद्वत्ता की खबरें गईं और उसे सभासदों में सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। आरुणी के लिए जहां हर्ष का विषय था वहां विषाद का भी। उसे हमेशा के लिए वह नगर छोड़कर राजधानी जाना था। ये मधुर दोपहरें उससे हमेशा के लिए छिन रही थीं। ये मधुर आलस्य भरे दिन, यौवन की मदमाती फुहारों से सींचित ये सुबहें, ये शामें सब उससे छिन रही थी। रम्भा भी उसके लिए अब एक नाम

जब वे सौ वर्ष के हो चुके थे।"

"हा ! हा ! हा।" खनकते कंकड़ों जैसी हंसी रम्भा के कंठ से फूटी। "तुम भी इन किवदंतियों मे विश्वास करते हो ?"

"किवदंती नही आर्ये" आरुणी के नेत्र विश्वास मे चमके, "यह सत्य है। इतना ही सत्य जितना यह नगर है, यह प्रासाद है। वे पुनः किशोर हो गए थे। काल ने उन्हे लौटा कर उसी गति मे पहुंचा दिया था।"

रम्भा कुछ कौतूहल, कुछ विस्मय में उसकी बातें सुनने लगी। उसमें बहस करना उसे व्यर्थ लगा। हो सकता है वह सही हो। ऐसा ही होगा, वह इन बातों को समझ नही सकती। आरुणी एक योगी है। एक मूक प्रशंसा और प्रेम उसकी आखो मे उठा, जिसके स्पर्श से आरुणी का ऊपर दार्शनिक ऊंचाइयों पर जाता हृदय रुक गया। उसने रम्भा को प्रगाढ़ आलिंगन में कस लिया और उनके अधर उस स्वर्ग को खोजने मे निमग्न हो गए जो आज भाग्य ने स्वयं उनके द्वार पर सजा रखा था।

उस रात आरुणी का मन उद्‌विग्न रहा। उसे रह-रह कर प्र-पितामह चन्द्र-बाहु की याद आती रही और वह सोचता रहा, वह कौन सी विलक्षण विधि होगी जिसके सहारे वे कालजयी हुए थे।

एक नई उधेड़-बुन आरुणी के मन में लग गई थी। कितने ही महीने बीत गए इस नई साधना मे। उसे कालजयी होना है। कहते है कि जो कार्य पूर्वजों में से कोई कर लेता है वह संतान के लिए काफी आसान हो जाता है। अगर कोई दृढ संकल्प कर उस पथ पर बढ़े तो पूर्वज द्वारा खोजा गया मार्ग स्वतः ही उसकी आत्मा के आगे अपने को फैला देता है। आरुणी इसी भरोसे पर चल निकला। महर्षि पातजली ने भी तो कहा है कि जो सच्चे साधक हैं उनके सहस्त्रार पर दिव्य ऋषिजन आकर उनका मार्ग निर्देशन करते हैं।

वह दो बार एक योगी और एक ऋषि से मिला। मगर इस विषय पर उनसे वार्ता करके उसे खिन्नता ही मिली। उन्होने उसे राय दी कि इन विभूतियों और सिद्धियों को पाने की अपेक्षा वह अपनी आत्मा के मोक्ष का यत्न करे। यह उसके लिए अधिक श्रेयस्कर होगा। आरुणी को लगा वे या तो उसे नही समझ सकते या फिर वही उन्हें नही समझा सकता। यह प्रश्न उसके लिए कोई सिद्धि प्राप्त करने का नही था। इससे उसकी आत्मा का सारा भविष्य जुड़ा था। जब तक

आत्मा कालजयी नहीं होगी उसका सोचने का ढंग काल से प्रेरित रहेगा। वह स्वतंत्र नहीं होगा, वह सत्य को नहीं जान सकेगा, क्योंकि काल जो उसे सुझाएगा वही वह सोचेगा और काल बड़ा निरंकुश उपहास करता है मनुष्य-जीवन का। वह उसे सत्य के चारों ओर घुमाता रहेगा और कभी भी सत्य में प्रवेश नहीं करने देगा।

अतः आरुणी स्वयं अपना गुरु बना। अपनी आत्मा के ही निर्देशन पर वह चलने लगा। सबसे पहली बात जो उसकी आत्मा ने सुझाई वह थी अपनी स्मृतियों, अनुभवो, विचारों सभी को मस्तिष्क से बाहर निकाल दो। ये सब काल के विभिन्न रूपांतर है। ये तू नहीं है। ये जाले हैं। ये वह धूल है जो तेरी आत्मा के रजत प्रकाश को ढके हुए हैं। स्वयं अपना प्रकाश बन। तेरा प्रकाश तेरी आत्मा ही है।

आरुणी की सारी आध्यात्मिक शक्तियां इन सबको मस्तिष्क मार्ग से बाहर निकालने मे लग गईं। आज तक के अनुभव, विचार, इच्छाएं, भावनाए सबको उसकी आत्मा जैसे उसके जीवन रूपी घर के कोने-कोने से समेट कर मस्तिष्क की ओर धकेलने लगी। धीरे-धीरे उसे लगने लगा जैसे उसके सारे अनुभव, विचार, इच्छाएं, भावनाएं एक दूसरे में इस तरह उलझ गई हैं जैसे ऊन का गोला और सब मस्तिष्क की ओर जा रही हैं। उसका सारा व्यक्तित्व मस्तिष्क मे आ गया है और बुरी तरह उलझ गया है।

× × ×

और तब एक दिन राज्य की नजरें आरुणी पर पड़ी। राजा के कानों तक उसकी विद्वत्ता की खबरें गईं और उसे सभासदो मे सम्मिलित होने का निमंत्रण मिला। आरुणी के लिए जहां हर्ष का विषय था वहां विषाद का भी। उसे हमेशा के लिए वह नगर छोड़कर राजधानी जाना था। ये मधुर दोपहरें उससे हमेशा के लिए छिन रही थी। ये मधुर आलस्य भरे दिन, यौवन की मदमाती फुहारों से सींचित ये सुबहे, ये शामें सब उससे छिन रही थी। रम्भा भी उसके लिए अब एक नाम

और स्मृति बन कर ही रह जाने को थी। परंतु उसे लगा इतना दुःख उसे रम्भा से अलग होने का नहीं था जितना अपनी स्वतन्त्रता के अपहरण का था। अब वह राज-पुरुष हो रहा था। आज तक वह आरुणी था। स्वतंत्र आरुणी जिसके पंख कटे नहीं थे, जो किसी का दास नहीं था, जिसका व्यक्तित्व कटा-छंटा नहीं था, जिसे कोई सीमा नहीं मिली थी, जो दिशाओं की तरह फैला हुआ और आकाश की तरह निस्सीम था। 'तत् त्वमसि' का जाप करते-करते जिसकी नस-नस ने अनुभव किया था प्रकृति की विशालता और रहस्यों से एक होने का सुख। प्रेरित क्षणों में उसने ब्रह्म की तरह अपने को सृष्टि के कण-कण में धड़कते हुए महसूस किया था। एक अज्ञात साया उसे बता रहा था कि उसकी यह अगम्यता, यह रहस्य-मयता, यह एकता छिन रही थी और उसे बदले में आभूषण, धन, राजकीय सम्मान से बाधकर एक अभिनेता बनाया जा रहा था। मगर फिर भी इन बंधनों में एक आकर्षण था। उसने दुनिया देखी नहीं थी। वही दुनिया उसके हृदय में बैठ उसे पुकार रही थी। उसे इसकी कटुताओं, माधुर्य, संकीर्णता और माया-वीयता का अनुभव करना था। उसकी कोरी आत्मा इसके लिए प्यासी थी। उसका अहं एक बड़ी चुनौती से जूझना चाहता था। उसका पौरुष उसके अर्धनारीश्वर रूप से अलग हो अपना रूप और बल आजमाना चाहता था।

परंतु कुछ ही महीनों में राजकीय मान-मर्यादाओं, ऐश्वर्यों तथा दरबारी चालों में घुटकर वह फिर अवकाश लेकर रम्भा से मिलने अपनी प्रिय नगरी वापस आया। वहां शशांक से उसे पता चला कि राजा ने नाराज होकर रवि वर्मन का पद और धन-सम्पदा सब छीन लिए थे। वह मदिरा और जुए में अपनी निराशा को डुबाने की चेष्टा में लगा था। उधर धन की आवश्यकता पूरी करने के लिए रम्भा नर्तकी से नगर-वधु बन गई थी। वह रम्भा जिसने आरुणी से पहले केवल रवि वर्मन को ही अपने नारीत्व को महकती बगिया में प्रवेश दिया था अब नगर के हर उस मनचले व्यक्ति की अंकशायिनी हो गई थी जो उसे बदले में स्वर्ण मुद्राएं दे सकता था।

नगर के बाहर उस गुफा के पास जहां कितनी ही बार वह रम्भा से मिला था, जिसमें अब भी प्रेमी जोड़ों के मिलने के कारण कामिनियों के इत्र की महक बसी हुई थी, वह बैठ गया सरोवर के किनारे। शाम ढल गई और काले पानी में वह झुका उंगली से लकीरें खींचता रहा। उसका प्रणय-स्वप्न भंग हो चुका

था। रंभा का नाम अंधेरों को प्यारा हो चला था।—

वह रम्भा से बिना मिले लौट आया और राजकीय कार्यों में पूरी कर्तव्य-परायणता के साथ लग गया। परंतु ज्यों-ज्यों वह कर्तव्यनिष्ठ हो काम करता गया उसके शत्रुओं की संख्या दरबार मे बढ़ने लगी। अन्य सभासद उसकी लोकप्रियता से चिढ़कर राजा के कान भरने लगे। उधर जनता के प्रतिनिधि उसकी गंभीरता को मद समझ अपनी गरिमा के प्रतिकूल पा उसके विरोधी हो गए। धीरे-धीरे आरुणी राजा की नजरों से गिर गया। राजा न तो उससे कुछ पूछता, न उसकी कोई भूल बताता। बस राजदरबार की नीति के अनुसार उसने उसके अस्तित्व पर ध्यान देना ही छोड़ दिया। यह स्थिति आरुणी के लिए असह्य थी। मगर वह इस नए कार्य में इतना लिप्त हो चुका था कि इससे अलग अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर सकता था। अतः इस तिरस्कार के घूंट को पीता हुआ वह अपने काम में लगा रहा। वह सत्यनिष्ठ था, अतः उसे पदच्युत करने का कोई कारण राजा को न मिल सका। परंतु उसे आदर्शवादी, अव्यावहारिक, दार्शनिक आदि अनेक नाम देकर महत्वपूर्ण राजकार्यों के लिए अयोग्य समझ भुला दिया गया।

रम्भा के पतन की दुःख-भरी घटना के बाद आरुणी की आत्मा का यत्न और भी तीव्र हो गया। चुन-चुन कर निर्दयता के साथ उसकी आत्मा ने उसके सभी विचारों, अनुभवों, इच्छाओं, वासनाओं को मस्तिष्क की ओर धकेलना शुरू कर दिया।

एक रात जब वह राज-कार्य से एक गाव में शिविर लगाकर ठहरा हुआ था, उसे लगा उसका मस्तिष्क फट गया। आत्मा महीनों से जो जोर लगा रही थी भीतर से सभी अनुभवों आदि को बाहर निकालने का उस जोर ने मस्तिष्क के सभी पेंचों को खोल दिया। उसे लगा घुंघरियाले अनेक स्नायुओं से मस्तिष्क बना हुआ था और ये सारे स्नायु सीधे खड़े हो गए। उनकी कुंडलियों ने मस्तिष्क के नीचे सभी अनुभवों, इच्छाओ आदि को रोक रखा था। अब एक ही धक्के में सब शरीर को छोड़कर निकल गए। उनके साथ ही शक्तियों का एक असह्य प्रवाह मस्तिष्क मे चढ़ आया था। उसे लगा उसका मस्तिष्क टूटकर बिखर गया। वह पागल हो रहा है। उसने शीशे मे अपनी आकृति देखी। आखें लाल थीं। किसी पागल [illegible] मस्तिष्क [illegible] चेहरा [illegible]

"नहीं मैं पागल नहीं होना चाहता," उसने अपने से कहा। "मगर कैसे इसे रोकूं। मेरे व्यक्तित्व की प्रलय हो गई है। आज तक जो भी सृष्ट था नष्ट हो गया। मैं शून्यमय हो गया हूं।"

तभी उसे अपने भीतर एक स्वर सुनाई दिया था। अब सो जा। निश्चित सो जा। सब ठीक हो जाएगा।

वह सो गया। अगली सुबह वह उठा तो उसे लगा मस्तिष्क खाली हो गया। बहुत दिनों तक वह इस शून्य को लिए विक्षिप्त-सा घूमता रहा। कोई उसे इसका इलाज न बता सका। जिन विद्वानों और वैद्यों से वह मिला, वे इस रोग को न समझ सके।

आखिर एक दिन उसी की आत्मा ने कहा, "ध्यान लगा।" स्वयं यह बात जैसे हृदय के अथाह शून्य और भय से उठकर आई। यह एक अजीब बात थी कि इस प्रलय में सब चीजें चली गई थी। परंतु भय नहीं गया था। भय उसे जैसे आज भी उसके अतीत से जोड़े हुए था। उसका हृदय भय से ऐंठा रहता था। अब क्या होगा मेरा? क्या मेरा जीवन नष्ट हो गया? क्या आत्मा इस जीवन में यहीं अटकी रह जाएगी? ये प्रश्न उसके हृदय के भयों से जकड़े रहते थे।

ध्यान की बात सुनकर उसकी आत्मा ने मानो स्वयं अपने से प्रश्न किया "मगर ध्यान किस पर लगाऊं? यहां तो शून्य ही शून्य है। शून्य के अलावा मुझको कुछ नहीं दीखता।"

तब उत्तर दिया हृदय ने, "कल्पना का सहारा ले। कल्पना कर सुंदरम् की, सच्चिदानंद की, सत्य और शिव की, कमल पर आसीन देवी की कल्पना कर और उसी पर ध्यान लगा।"

आरुणी अभ्यास करने लगा। धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क में ध्यान लगाने की अपूर्व क्षमता जाग गई। उसका मस्तिष्क निरंतर सुंदरम् के ध्यान में रहने लगा। इससे उसमें सब कार्यों के बीच तटस्थ रहने की योग्यता आ गई। वह ब्रह्म जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, और सुंदरम् बन कर सृष्टि के कण-कण में बसा है, उसी के कल्पित बिंदु रूप पर उसका मस्तिष्क ध्यान मग्न रहने लगा। वह एक निःस्पृह भाव से अपने राजकीय कर्त्तव्य पूरे करता। उसका ध्यान जैसे इस दुनिया में नहीं था। वह इस दुनिया में घूमते हुए भी जैसे किसी और लोक में था।

उसके मस्तिष्क में इस साधना से कुछ नई शक्तियां जाग गईं। उसका

व्यक्तित्व और प्रभावशाली हो गया था। उसमें और गंभीरता आ गई थी। लोग उससे डरने लगे थे। उसका सम्मान बहुत बढ़ गया था। यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि उसे कोई लालच, भय, मोह, काम, दाम, क्रोध आदि न्याय के पथ से विचलित नहीं कर सकते।

उसका सहज ही लोगों से मैत्री कर लेने वाला स्वभाव चला गया था। इसका उसे दुःख था। वह अब अकेला-सा रहने लगा था, क्योंकि लोगों की बातों में उसका मन नहीं लगता था। जिन बातों पर लोग जोश में आ जाते थे, लड़ पड़ते थे या किसी के कृतज्ञ हो जाते थे, वे बातें उसे बहुत मामूली लगती थीं। अन्य युवकों को जिन चीजों में रुचि थी उनमें वह विरक्त हो चुका था।

तब एक दिन कार्तिक के मेले में जब महाराज आदित्य वर्मन और सभी सभासदों के खेमे गंगा के तट पर लगे थे, चंद्रमा की शीतल किरणों के तले अकेले टहलते उसे लगा वह ऊर्ध्व दिशा में जा सकता है। मानो कोई गुप्त द्वार खुल गया था। एक आह्लाद उसे यह जानकर हुआ। उसे याद आया रम्भा के साथ उस दिन बातें करते हुए उसने यही कहा था। आज ऊर्ध्व दिशा में उड़ने का दिन आ गया। प्रपितामह चंद्र बाहु की तरह आज वह भी सूर्य तक उड़ेगा और अक्षय कौमार्य और यौवन को शरीर में उतार लाएगा।

उसे लगा जैसे ही उसकी आत्मा ने एकाग्र हो संकल्प किया वह उड़ने लगा, तेजी से उड़ने लगा। इतनी तेजी से उड़ने से एक रोमांच उसके हृदय में हुआ। उसे लगा वह सूर्य मंडल में प्रविष्ट हो चुका है और अक्षय कौमार्य और यौवन की वर्षा में नहा रहा है। उसके मुख पर एक नया तेज था और उसके अंगों में एक नई स्फूर्ति और शक्ति। उसे लग रहा था जैसे वह इस दुनिया का नहीं था जैसे ऊपर बादलों में पालकी में विचरता हुआ कोई देवता था। वह जो अपने नीचे मृत्यु और जीवन के चक्र में फंसी मनुष्यों की दुनिया को देख रहा था। इस दुनिया को वह जैसे बहुत पीछे छोड़ चुका था।

इस स्थिति में भी उसे बहुत दिनों तक दिल की आवाजों ने न रहने दिया। उसे लगने लगा यह अमानवीय स्थिति है। वह पृथ्वी उसने पीछे छोड़ दी जो प्रभु ने रहने को दी थी। वह फिर से पृथ्वी पर लौटने को व्यग्र रहने लगा।

× × ×

आरुणी एक न्यायाधीश बना दिया गया। वह ईमानदार और निष्पक्ष था। राजा आदित्य वर्मन उसके गुण को खूब जानता था। उसके न्याय से जो लोग असंतुष्ट रह जाते थे अपनी अपील राजा आदित्य वर्मन के दरबार में करते थे। आरुणी के न्याय की समीक्षा करते हुए उसने उसके तर्क कौशल और सत्य अन्वेषी आत्मा के प्रमाण को देखा था और उससे बहुत कुछ सीखा था। राजा मूर्ख नहीं था। कभी-कभी आरुणी से बातें करते हुए वह एकांत में अपना हृदय उसके आगे खोल देता था। आरुणी के साथ कोई भी अकेले बातें करके बिना खुले नहीं रह सकता था। उसकी बातों में ऐसी ही सरलता और कवचहीनता थी। राजा ने कितनी ही बार आरुणी से आखेट पर चलने को कहा, उसे अपनी रात्रिकालीन व्यक्तिगत नृत्य-सभा में आने का आमन्त्रण दिया, अपने साथ द्यूत खेलने को कहा परंतु आरुणी इन व्यसनों से दूर था। उसे इनमें घुटन महसूस होती थी। नित्य नई बालाओं में रमना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। जुए के विरुद्ध जो संस्कार उसे ऋषिकुल में मिले थे, उनकी जकड़ आज भी उतनी ही थी। सुरापान वह कभी-कभी कर लेता था, मगर राजा के साथ नहीं कर सकता था। न जाने कैसे वह भय जो उसकी आत्मा में उसके पिता के प्रति था वही भय राजा के प्रति भी जाग गया था। उसे राजा में अपने पिता की ही प्रतिमूर्ति दीखती थी। वह उसके समक्ष कम-से-कम रुकता और हमेशा इस चेष्टा में रहता कि वह राजा के सामने न पड़े। उसके इस व्यवहार को राजा न समझ सका। उसे आरुणी एक गर्वीला, विनयहीन, दार्शनिक लगने लगा। आरुणी दरबारी प्रपंच और तंत्र जाल से अनभिज्ञ था। वह नहीं जानता था कि यही बातें काफी थी उसके शत्रुओं के लिए। इन्हें ही लेकर उन्होंने राजा के आगे आरुणी का एक चित्र खींच दिया जो एक अविश्वसनीय, रहस्यमय और घमंडी पुरुष का था। बहुत वर्ष लगे आरुणी को यह जानने में कि दरबारी चालों से बचने के लिए राजा का व्यक्तिगत सामीप्य बहुत जरूरी था और कोई भी चीज मनुष्य को दूसरे के निकट इतनी तेजी से नहीं लाती जितने व्यसन। उसने तो तपोवन में केवल सप्तव्यनों के दमन का मार्ग जाना था। इनमें प्रवृत्त होना और वह भी राजा के आगे उसकी नजरों में सामाजिक अपराध था। वह एक दंडनीय कर्म राजा के सामने करे यह साहस उसमें नहीं था। तपोवन के अनुशासन ने उसे सिखाया था कि यदि दुष्कर्मों के संस्कार मन में जोर मारें तो उन चित्तवृत्तियों को कुचल दो। उन्हें भूलकर भी

बाहर व्यक्त मत करो। वह नहीं जानता था कि राज दरबारों की नीति इसकी उलटी थी। जो बुरे संस्कार भीतर हैं उन्हें बाहर प्रकट करने का साहस रखो। वह चतुरता सीखो जिससे उन्हें प्रकट कर सको ऐसे समय और अवसर को देख कर जब वे किसी अन्य व्यक्ति के कर्म की प्रतिक्रिया लगें। इससे वे प्रकट भी हो जाएंगे और उनका दोष भी अपने सिर नहीं होगा। अपने बुरे संस्कारों को वह राजा की संगति मे व्यक्त कर सकता था और फिर भी उनका दोष उसे न लगता। यही कहा जाता कि वह राजा के मनोरंजन के लिए ऐसा कर रहा है। इस तरह वह राजा का भी विश्वास पात्र बनता। बुराइयों मे साथ देकर आत्माएं घनिष्ठ होती है। बुद्धिमानी इस घनिष्ठता से बचने मे नहीं है बल्कि इसमें है कि इसे प्राप्त करने के उपरान्त हमारा उद्देश्य मलिन न हो। हम इसका प्रयोग जन कल्याण के ही उद्देश्य से करें, निजी स्वर्थों के लिए नहीं।

× × ×

राजा के मंत्रियों में एक वृद्ध मंत्री सत्यव्रत था। वह न तो ज्ञानी था। न ही उसने विविध विद्याओं का विशद् अध्ययन किया था। उसका सारा ज्ञान अनुभव जन्य था। वह सभी व्यसनों में प्रवृत्त होता परंतु उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे कमल और कीचड़ वाली मिसाल बिलकुल सच्ची थी। गर्दन तक दरबारी चालों और कुचालो में फंसकर भी कोई उनसे अनछुआ रह सकता है, यह रहस्य जानने के लिए सत्यव्रत को जानना जरूरी था।

सत्यव्रत को आरुणी से कोई विद्वेष नहीं था। उसने कितनी ही बार उसके बारे मे राजा की शंकाओं को दूर किया था। उसके कारण आरुणी के शत्रु राजा को पूरी तरह आरुणी के विरुद्ध करने मे सफल नहीं हो पाते थे।

उस शाम वह सत्यव्रत के घर था। उसके साथ सुरापान करने मे उसे कोई आपत्ति न थी। सत्यव्रत का गौर मुख मदिरा पान के कारण तमतमा गया था और उसकी सफेद दाढी खूब फब रही थी। समुद्री लुटेरो के विरुद्ध लड़ने में उसका पूरा यौवन बीता था। वे कथाएं बहुत रोचक थीं। और जब कुछ और न होता आरुणी

उससे वे ही कथाएं सुनता। रोम, यूनान, चीन, जापान, मिस्र, बगदाद आदि अनेक देश सत्यव्रत ने देखे थे। वहां की सुंदरियों की अलग-अलग आदतों और कमनीयताओं के वर्णन वृद्ध सत्यव्रत खूब हस-हंस कर करता था। बात होते-होते राजदरबारों तक आई।" मैंने कहा था तुम महाराजा आदित्य वर्मन से व्यक्तिगत मिलने के लिए सप्ताह मे कम-से-कम एक बार अवश्य राजमहल जाया करो। अरे वो बहुत खुश होंगे। आरुणी! अभी परसों वह तुम्हारी तारीफ कर रहे थे। उनका ख्याल है तुम बहुत लज्जाशील हो। पुरुष को इतना लजीला नही होना चाहिए।"

"अच्छा तो महाराजा का हुक्म प्रकृति पर भी चलना चाहिए?"

"क्या मतलब?"

"यानी मैं ऐसा क्यों हूं जैसा प्रकृति ने मुझे बनाया। मुझे वैसा होना चाहिए जैसा राजा के विचार से पुरुष को होना चाहिए।" आरुणी को इस तरह खुलकर सत्यव्रत से बात करने मे बड़ा आनन्द आता था। उसकी आत्मा मे कही छुपी चतुराई ने जान लिया था कि वह इस व्यक्ति के आगे अपनी सारी भडास खुलकर निकाल सकता था। और वह ऐसा ही था जैसे अंधे कुएं में कोई चीज फेंक देना। यह व्यक्ति उन लोगों मे नही था जो उसकी बातों को बढा-चढाकर महाराज तक पहुंचाएगा।

सत्यव्रत हंसने लगा, "आरुणी तुम इतने अजीब क्यों हो? बुरा मत मानना मित्र। मुझे लगता है भीतर से तुम काफी काले हो।" सत्यव्रत और जोरों से हंसने लगा और आरुणी की संसज्ञ आखो ने एक तेजी से भांप लिया कि उसने केवल परिहास के लिए ऐसा कहा था। उसकी आखो मे कोई आलोचना नही थी।

यहां सत्यव्रत की खूबी थी। उसने बात कह दी थी और इस ढंग से कि आरुणी जैसा ससज्ञ युवक भी उसका बुरा नही मान सका था। सत्यव्रत की अनुभवी आंखों ने देख लिया था कि आरुणी एक विभक्त व्यक्तित्व है। उसमे एक नही दो आरुणी रहते हैं। एक उदात्त है, आदर्शवादी। वह सूर्य की तरह निष्पक्ष उदार और निःस्पृह है, जो समाज को अपना सर्वस्व बिना उत्तर मे कुछ चाहे दे देने को तत्पर है। वह राज-सेवा धन या पद के लिए नही कर रहा है बल्कि इसलिए कि अपनी आत्मा की न्यायशीलता वह इस तरह व्यक्त कर सकता है। और सब मनुष्यों पर उसकी समान वर्षा कर सकता है। वह बुद्धिमान और सच्चरित्र है। उसकी आत्मा को खरीदा नही जा सकता। मगर उसमे एक और आरुणी है जो

कहीं गहन अधरों में सो गया है उसकी आत्मा के। वह एक जहरीली नींद सो गया है। वह अपरिपक्व है। वह एक बालक की तरह है। वह आंसुओं से भीगा मुंह लिए उस अंधेरे कोने में, कभी अतीत में जा सोया है और आज तक वे आंसू सूखे नहीं है। सत्यव्रत के अनुभवी जीवन ने बहुत से लोग देखे थे जिनमें वह सोता हुआ आया व्यक्तित्व वृद्धावस्था में जाकर जागा था और वे उद्भ्रांत और विक्षिप्त से हो गए थे। उनके मूल्यों का प्रासाद टूट-टूटकर बिखर गया था और उनका अंत अत्यंत भयानक और प्रकाशहीन रहा था। सत्यव्रत चाहता था कि वह सोता हुआ आरुणी अरुण-यौवन में ही जाग जाए जिससे वह दोनों आरुणियों को एक करने का कोई मार्ग ढूंढ़ ले।

कुछ देर तक वह आरुणी की आदर्शवादी बातों को सुनता रहा और फिर बोला, "क्षमा करना सहोदर। इतना ज्यादा आदर्शवाद जिस व्यक्ति में हो उस पर मेरा विश्वास नहीं जमता।"

"क्यों?"

"मुझे लगता है उसकी आत्मा का उजला हिस्सा बोल रहा है। फिर मेरे मन में प्यास लगती है कि उसका कृष्ण पक्ष कहां है। जब तक दोनों को न सुन लूं मुझे नहीं लगता कि मैं किसी आदमी से बात कर रहा हूं मुझे लगता है कोई दिव्य प्रेत है।

"फिर तुम परमेश्वर की इस अनोखी कृति मनुष्य को नहीं जानते। वही विधाता के सपनों को साकार करता है। यह संभव है कि मनुष्य की आत्मा के सारे अंधेरे मिट जाएं केवल शुक्ल पक्ष रह जाए।"

"अंधेरे मिटते नहीं दबा दिए जाते है। इतना उजाला स्वाभाविक नहीं होता वत्स। अंधेरों को उजाले में घोला जाता है। तब उजाले इतने उजले नहीं रहते और अंधेरे इतने अंधेरे नहीं रहते। वही मनुष्य का व्यक्तित्व है।"

"मगर मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि यह संभव है। अगर हम अपनी दुष्ट वृत्तियों का दमन करते जाएं, काम, क्रोध, आदि को कुचलते रहें तो एक स्थिति आती है जब आत्मा केवल प्रकाश स्वरूप हो जाती है। और प्रकाश ही तो उसका सच्चा स्वरूप है।"

"आरुणी, जो तुम कह रहे हो वह सुनने में अच्छा लगता है पर सत्य नहीं है। व्यावहारिक जन ऐसी भाषा नहीं बोलते।"

आरुणी को कुछ बुरा लगा, "अच्छा तो तुम बताओ सत्य क्या है ?"

सत्यव्रत गूढ़ विषयों में आसानी से प्रवृत्त नहीं होता था। कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोला, "देखो जिस उज्ज्वल, प्रकाशमयी, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, ब्रह्म-स्वरूप आत्मा का वर्णन आजकल ऋषिजन करते हैं वह आत्मा तुम्हें या मुझे मिली नहीं है। वह तो हर कण में है। हमारे हृदय में भी है मगर सो रही है हम हजारों जन्म बिता सकते है और वह सोती रह सकती है।"

"तो फिर यह क्या है जिसे हम अपनी आत्मा कहते हैं।"

"काल और देश दो जुड़वां भाई हैं। वे एक जाल बुनते हैं जिसमें यह गुण है कि वह इस आत्मा की परछाइयों को पकड़ कर सजीव कर देता है। ये जुड़वां भाई हम सब में है। इन्होंने ऐसी ही कोई परछाई मन इंद्रियों में कैद कर ली है जिसे हम आत्मा कहते है। यह व्यावहारिक आत्मा है। यह मलिन है। यह जिद्दी है। इसे पांचों पाप घेरे हुए हैं। मन इंद्रियों में कैद रहते-रहते यह भी उन्हीं की तरह चंचल और अज्ञानी हो गई है।"

"तो फिर ये आदर्शवादी विचार, मनुष्य, मानव मात्र के प्रति निःस्वार्थ-सात्विक प्रेम क्या है ? ये उदात्त भावनाएं क्या हैं ? यह दिव्य माताएं हैं प्रकृति, त्रिपुरा, धर्म। ये तीनों भी इसी शरीर में रहती है। ये सात्विक हैं। हमारी आत्मा चाहे कितनी भी पतित हो जाए इनकी दिव्यता वैसी ही बनी रहती है। यह आदर्श वादिता और पवित्र आध्यात्मिक प्रेम इन माताओं की सांसें हैं जो हमारे शरीर को महकाए रहती है। परंतु ये सिर्फ इसलिए है कि पाप में डूबी हमारी आत्मा को याद रहे कि उसे उन जैसा होना है, पाप की दलदल से उठना है। जो उन्हें अपनी ही आत्मा समझते है वे उस बच्चे की तरह हैं जो बड़ा होकर भी मां की गोद से नहीं उतरता। वह समझता है कि मां ही उसके सब काम करेगी। वह मां को अपने से भिन्न शरीर नहीं समझता। वह कभी भी विकसित नहीं होता। दूसरे वह और गहरे नर्क में अपनी आत्मा को दबा देता है। जो उसका असली रूप है नर्क तुल्य, उसे वह बुरे संस्कार कहकर दबा देता है। इससे वे प्रबल हो जाते हैं क्योंकि यह आत्मा है संस्कारों की कुशा नहीं है जिसे हम कुचल कर नष्ट कर दें। हम जीवन-भर इसी में पड़े रहते हैं कि ये सिर्फ संस्कार हैं और दिव्य माताओं को अपनी आत्मा समझ उन्हें कर्मरत करा देते है। यह जघन्य पाप है। वे माताएं स्वभाव से सात्विक हैं। ये सिर्फ हमें ईश्वर की याद दिलाने के लिए हैं ताकि हम

भूल न जाएं कि हम वास्तव में ईश्वर हैं। परंतु "तत् त्वमसि" कोई यथार्थ नहीं है। यह जागृति है। इस स्थिति को योगी जन आत्मा को कर्मरत करके प्राप्त करते हैं।"

आरुणी का विरोध दूर हो गया था। उसे सत्यव्रत की बातों में आलोक का अनुभव हुआ उसका पात्र मदिरा से भरकर बढ़ाते हुए वह बोला, "परंतु कर्म तो बांधते है। अच्छे कर्म भी बांधते है बुरे भी। कर्मों से उपरत होकर ही तो मोक्ष मिलता है।"

एक ही घूट में सत्यव्रत ने पात्र खाली कर दिया। रात बढ गई थी। अट्टालिका की सफेद मीनार में जहा वे बैठे थे, ठंड लगने लगी थी। अपनी शाल कंधों पर खीचते हुए सत्यव्रत बोला, "तुमने पढ़ा बहुत है पुत्र। क्षमा करना परंतु प्रेम के अभाव मे तुम उसे समझ नही सके। ज्ञान को भी प्रेम के उजाले की जरूरत है अन्यथा अर्थ के अनर्थ हो जाते हैं।"

और कोई अवसर होता तो आरुणी इसी बात पर घंटों उससे बहस करता और उसे गलत साबित करता। मगर आज की रात का हर पल उसके उदर को मुट्ठियों मे जकड़ कर छोड़ रहा था। एक ऐसी ही गुदगुदी उसके उदर मे लगी थी। वह सत्यव्रत को सुनना चाहता था। उसका पूरा जीवन-दर्शन जानना चाहता था। इस बूढ़े के अस्तित्व मे उसने एक मोहक पर्वत के दूसरी ओर वाला तत्त्व पाया था जिसे वह समझ नहीं सकता था क्योंकि उसका ज्ञान पर्वत के इस ओर का था। सभी बुराइयों मे डूबकर भी वह कैसे इतना निःस्पृह और सर्वप्रिय था। आज सत्यव्रत आप ही बोल रहा था। आज सिर्फ सुनने का क्षण था। रम्भा के बाद पहला अवसर आया था जीवन में कुछ सीखने का।

सत्यव्रत ने दूसरा पात्र भरकर उसे भी खाली कर दिया और फिर बोला, "तुम जानते हो आरुणी एक राज। कुछ कर्म ऐसे है जो अच्छे हैं और नहीं बांधते। उनके बदले मे स्वर्ग में आत्मा को अटकना नही पड़ता, उनके फल भोगने को। वे सीधे मोक्ष में जाते हैं।"

"प्रेम से प्रेरित होकर कर्मरत् हो। आरुणी, किसी से प्रेम कर। फिर देख तेरी यह पतित, दबी, व्यवहारिक आत्मा किस तरह ईर्ष्या, दुःख और चाहत मे जलती है। तू उस प्रियतमा को पाने की कोशिश कर और तब देख शतरंज का खेल कैसे खिलता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, क्या है, उनकी शक्ति क्या है ये तू

तभी समझेगा जब किसी के प्रेम में तेरी आत्मा जलेगी। तभी ये पांचों पाप कदम-कदम पर अड़चन डालेंगे। तभी ये पाप तेरी आत्मा का साथ देने आएंगे। तब तू जानेगा, इनकी मदद न लेना, केवल प्रेम के इनके प्रकाश में जलती-सुलगती आत्मा का आगे बढ़ना, कितना कठिन और स्वर्गिक है।" पहली बार आरणी ने वृद्ध सत्यव्रत की आंखों में आंसू देखे। "तब तू जानेगा कि स्वर्ग क्या है, मोक्ष क्या है? तब तू जानेगा युधिष्ठर ने क्यों इन्द्र के साथ स्वर्ग जाने से इनकार कर दिया था। क्यों उसने कुत्ते के प्रति अपने थोड़े से प्रेम को मारना मंजूर नहीं किया और स्वर्ग छोड़ने को तैयार हो गया।"

एक आह्लाद सत्यव्रत के सीने पर नाच रहा था। वह बाहें किसी दिव्य वेदना में इधर-उधर तीव्रता से फेंकने लगा था मानो हृदय पर नाचती यह माधुर्य-मय वेदना असह्य हो गई थी।

"मुक्ति उन्हें मिलती है जो किसी अन्य को अपनी पतित आत्मा में बसा लेते हैं। उसके प्रेम में जलते हैं केवल प्रेम के आलोक को लेकर काल, देश और असंख्य तत्त्वों की इस सृष्टि से निकल आते हैं। उनका अहंकार घुल जाता है। उसके साथ उनकी यह व्यावहारिक आत्मा मिट जाती है। काल, देश का वह मोहक जाल टूट जाता है और मन इन्द्रियों में बंद आत्मा की परछाईं मुक्त होकर सृष्टि में लीन हो जाती है। तब ऐसे लोगों में वह आत्मा जगती है जिसका पता याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी देते हैं, सत्यकाम जाबाल और जनक देते हैं अपनी आत्मा को जलाकर ऋषिजन जिसका उस अग्नि की लपटों में साक्षात्कार करते हैं।"

इतना कहने के बाद सत्यव्रत एकदम चुप हो गया। जैसे एक ज्वार भाटा आया था जो शांत हो गया।

आरणी जानता था वह क्षण चला गया और अब स्वयं सत्यव्रत उससे आंखें बचा रहा था। उसे लगा अब उसे चल देना चाहिए।

घर लौटकर उसे देर तक नींद नहीं आई। उसे पहली बार लगा उसे मार्ग मिल गया। आज तक का जीवन तो दिव्य माताओं का आशीर्वाद रहा था। उसकी आत्मा के कर्मों का फल नहीं था। आत्मा ने तो मंजरी के बाद मां की प्रताड़ना खाकर कर्म से मुख मोड़ लिया था। उसके बाद तो उसने दिव्य माताओं को ही कर्मरत किया था। मन-ही-मन हाथ जोड़कर उसने दिव्य माताओं से इस

धृष्टता के लिए क्षमा मांगी और भविष्य में कभी भी उन्हें कमरत् न करने का प्रण किया।

उसने महसूस किया सचमुच आरुणी मन-इन्द्रियों में कैद पडा था। काल एक भयानक सर्प बन मन-इन्द्रियों के बाहर पहरा दे रहा था। वह उस कुडली के बाहर नहीं निकल सकता और देश निराशा-भरी हवाएं बन उस कारागार की खिड़कियों से निरंतर आकर उसकी आत्मा को सुला रहा था। "तू सो जा। तू बहुत नीच है। तूने अपने ही ऋषिकुल की कन्या मंजरी की कामना की। तेरा कोई भी विश्वास नहीं। तू जीएगा तो आरुणी को अपमान, लज्जा, कारागार के अलावा कुछ न मिलेगा।"

एक क्षण को आरुणी को लगा वह अपनी आत्मा का चेहरा देख सकता है। वह एकदम काला झुलसा हुआ है। वह एक बालक का चेहरा है पर इतना डरावना कि कोई उसके आंसू नहीं देख सकता। उसका सारा चेहरा आंसुओं से भीगा हुआ है और वह मुंह भूमि में छुपाए केंचुए की तरह भूमि में घुसने का उपक्रम कर रहा है।

एक कंपकंपी आरुणी की पीठ मे बिजली की तरह दौड़ गई और उंगलियों में से बाहर निकल गई। उठकर उसने पानी पिया। मैं इतने नीचे न जाने किस नर्क मे पड़ा हूं। एक तीव्र घृणा और हिंसा का भाव उसके मन में अपने माता-पिता और मजरी के प्रति उठा जिन्होंने उसकी यह दशा की थी। मन-ही-मन उसने उन तीनों की हत्या कर दी और कितने ही अपशब्द तीनों के लिए उसके होंठों से निकले। ऐसा करने मे उसे बहुत सुख मिल रहा था। परंतु दूसरे ही क्षण उसे एक अजीब-सी अनुभूति हुई उसे लगा वह सचमुच भूमि पर नहीं है। वह भूमि के नीचे है कहीं। फिर उसे तीव्र आग अंगों को जलाती हुई महसूस हुई। उसे लगा वह अपनी गर्दन भी नहीं हिला सकता उसका शरीर निशक्त, निष्प्राण-सा है। वह जीवित है मगर ऐसी शक्तियों के हाथ में है जो उसे हिलने भी नहीं दे रही है। नर्क है। उसे साफ लगा वह नर्क में है। एक नर्क से निकल कर वह दूसरे मे जा रहा है। यह रौरव नर्क है या सातवां नर्क है। उसे आरे से काटा जा रहा है। वह गंदगी के तालाब में पड़ा है। उसका दम घुट रहा है। मगर वह जानता है कि वह मरेगा नहीं। मर गया तो फिर जिंदा कर दिया जायेगा। उसे यह सारे दुःख भोगने हैं। भयानक सींगों वाले राक्षस उसे रौंद रहे है।

मगर एक अजीब-सी बात थी। एक आवाज थी कहीं भीतर आत्मा में जो कह रही थी, चिंतित न हो। यह तेरा प्रक्षालन है। साहस जगा। अपने असीम भय को जीत। वह अंधेरा जो तूने उस रात देखा था जब तू अकेला गायों को लेने गया था याद कर उसे। वह इन भयावने अनुभवों के आगे कुछ नहीं था। उसे मिटना ही होगा यदि तुझे जागना है। उसे तभी मिटाया जा सकता है जब उससे भी भयानक चीज तू अनुभव करे। इस नर्क को अनुभव कर। यह प्रभु की कृपा है। सैंकड़ों वर्षों की यात्रा तुझे एक ही रात में सुलभ हो रही है। और तभी उसके पिता की आकृति एक भयानक अंधेरे कमरे में उसके आगे उभरी। उसने देखा एक भयानक विशाल, बहुत विशाल गुफा जैसा कमरा है जिसमें अंधेरा है वहां बीच में एक पत्थर के सिंहासन पर उसके पिता बैठे हैं। वे अपने कद से कई गुने बड़े लग रहे हैं और एक अपार्थिव प्रकाश उनके भयानक नेत्रों से निकल रहा है। वे नेत्र मशालों की तरह जल रहे हैं। उनकी रोशनी में उनकी पूरी आकृति दीख रही है। उनके नेत्रों से काले-काले असंख्य उन्हीं जैसे परंतु उनसे बहुत छोटे बच्चे निकल रहे हैं। उससे कोई कान में कहता है ये हैं इनके पुत्र। आरुणी के नेत्रों में आंसू आ गए। "हां यह थे इनके पुत्र। मैं न जाने कौन था। न जाने कौन मेरी मां थी जो उनके घर मुझे छोड़ आई थी और मुझे नहीं बताया गया।"

दूसरे क्षण वह दृश्य गायब हो चुका था। गुफा के बाहर धूप फैल गई थी। आरुणी सो गया।

× × ×

सत्यव्रत की बातों में आरुणी को आगे का मार्ग मिल गया। उसकी आत्मा उर्ध्व दिशा में उड़ी और सूर्य तक जाकर रुक गई थी। वहां पहुंच कर उसके क्रूर गुरु हृदय ने आदेश दिया था।पृथ्वी पर लौटने का। आज तक तपोवन में जो उसे सिखाया था वह था आत्मा को उर्ध्व दिशा में उठाते जाओ। उर्ध्वता के इसी यज्ञ में आत्मा ब्रह्म में लीन हो जाएगी। परंतु हृदय अब कुछ और कह रहा था। उर्ध्वता की निरंतर यात्रा भी मनुष्य को अंधेरों में ले जाती है। अब हृदय कह

रहा था नीचे जा, अधोगति को प्राप्त हो। तुझे पृथ्वी मिली है जीने को और उसी पृथ्वी से तूने नाते तोड़ लिए।

मैं कौन-सा पाप करूं कि तीर लगे पक्षी की तरह भूमि पर आ गिरूं? आरुणी परेशान था क्योंकि उसे लगने लगा था कि वह शून्य में रुक गया है। और नीचे नहीं गिर पा रहा है। उसका पाप करने का अधिकार छिन चुका है। पाप-पुण्य में उसे रुचि नहीं रही है। तब एक और भय उसके हृदय में उठा कि कहीं वह उस शून्य में तो नहीं आ गया है जहां हजारों वर्षों से त्रिशकु लटका हुआ है। यह कैसी विडंबना है। वह हृदय में उठने वाली आवाज के अनुसार चलता रहा है और वह आवाज उसे देश और काल से बाहर के उस शून्य में ले आई है जिसका पृथ्वी से कोई संपर्क नहीं, जहां पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण काम नहीं करता। इस शून्य से वह कैसे निकले? दिन-रात यही एक चिंता उसे खाए जा रही थी।

तब एक दिन जब वह घोड़े पर वन-विहार के लिए निकला तो लौटकर नहीं आया। उसने हमेशा के लिए राजधानी छोड़ दी, दरबार छोड़ दिया अपना भवन और सम्पदा छोड़ दिए। अनेक लोगों को और स्वयं महाराज को यह विश्वास हो गया कि उसे किसी जंगली पशु ने खा लिया। मगर एक व्यक्ति था सत्यव्रत जिसे विश्वास था वह अपनी इच्छा से गया है। उस रात उसने उसके चेहरे पर कुछ ऐसे ही भावों को अंकुरों की तरह फूटते देखा था जो एक व्यक्ति की जीवन-धारा मोड़ देते हैं।

आरुणी ने अपने वस्त्र, आभूषण और अश्व एक किसान को दे दिए और बदले में उसके पुराने वस्त्र पहन लिए। फिर कुन्द लुहार के यहां उसने नौकरी कर ली। दिन-भर गरम भट्टी के आगे वह धौंकनी चलाता और रथों के पहियों पर लोहा चढ़ाता। घोड़ों की नाल बनाता और जब बुरी तरह थक जाता तो सो जाता। लोहार का काम उसके आने से खूब चल निकला था। दूर-दूर के रथ उसके यहां आने लगे थे। उसका चढ़ाया लोहा रथों की दौड़ प्रतियोगिताओं और युद्ध भूमि में भी सहायक सिद्ध हुआ था। बड़े-बड़े योद्धाओं के घोड़ों की नालें उसके यहा लगती थीं। कठिन श्रम से आरुणी का शरीर गठ गया। उसकी दाढ़ी और केश बहुत बढ गए थे और आग के पास दिन-भर रहने के कारण उसका वर्ण जल कर काला हो गया था। लुहार ने बहुत चाहा कि उसे वेतन दे। जब उसने नहीं लिया तो उसने उसे हिस्सेदार बनाना चाहा। मगर आरुणी सिवाय एक

वक्त भोजन के और कुछ नही लेता था और भोजन भी रूखा-सूखा। लुहार डरने लगा था कि कहीं वह उसे अचानक छोड़कर चल न दे। उसने उसे अपनी पुत्री के साथ विवाह मे बाध देना चाहा। मगर आरुणी न माना।

लुहार की कन्या आरुणी का हाथ बंटाने लगी। इस चुप-चुप गुम-सुम काम मे लगे पुरुष के प्रति उसके हृदय में खिचाव होने लगा था। आरुणी पैंतीस वर्ष का हो चुका था। और अपनी आयु के बल पर वह बड़ों की तरह बोलता जैसे वह एक बच्ची हो। मगर वह उस दूरी को बनने नही देती थी।

आरुणी पर उसकी मदमाती आखों का कोई असर नही था। उसका उच्छृंखल यौवन उसके लिए कोई मायने नही रखता था। वह उस सीमा को पार कर चुका है उसे लगा, जहा नारी का रूप प्राणो को विह्वल कर देता है। उसकी नजरों मे अब नारी का शरीर असहाय और एक निर्बल चीज था जिसके लिए उसके हृदय मे केवल करुणा थी।

एक रात उसने स्वप्न देखा। एक काला कबल है जिसे वह झोपड़ी में ढूढ़ रहा है। वह काला कम्बल उसे लुहार की पत्नि के संदूक मे मिलता है। उसे कंधे पर डालकर वह वन की ओर चल देता है। उसे आश्चर्य होता है देखकर कि कुछ दूर चलने पर वह कम्बल उस लुहार की कन्या मे बदल जाता है। उसका गठीला श्याम शरीर उसकी पीठ से एक कम्बल की तरह लिपटा है। वह उसे पीठ से उतार देता है और फिर वे दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बंध जाते हैं। काम-पीड़ा उसे बुरी तरह सताने लगती है।

अर्धरात्रि थी जब आरुणी इस स्वप्न से इस तरह जागा जैसे उसे किसी सर्प की ठंडी चिकनी त्वचा ने छू लिया हो। वह बाहर कदम्ब के वृक्ष के नीचे आ बैठा और बड़ी देर तक दुःख और ग्लानि से भरा बैठा रहा। जब पृथ्वी से सम्पर्क टूट गया, जब मनुष्य के सुख-दुःख अपरिचित हो गए तो फिर एक मानवी के प्रति वासना कैसे जागी उसमे? उसे कोई अधिकार नही है उन सुखो को पाने का जो मनुष्य एक दूसरे को दे सकते हैं क्योंकि वह मनुष्य नही रहा?

उसी रात उसने कुद लुहार का घर छोड़ दिया। मार्ग मे उसे कुछ डाकू मिल गए जिन्होने उससे सेठ धनपाल के बारे में कुछ जानकारी चाही। उसने बताया कि उसने उसका नाम भी पहले नही सुना था। डाकू हंस पड़े, "अरे! बड़ा गंवार है तू। धनपाल का नाम कौन नहीं जानता। कुबेर है कुबेर। पूरे मालवा मे उसके

बराबर धन किसी के पास नहीं है। कौन है जो उसका नाम न जानता हो? रोम, समरकंद, यूनान, चीन सभी देशों को तो उसके जहाज माल ले जाते हैं।"

उसके फिर भी न करने पर दस्युओं को शक हुआ कि यह जरूर धनपाल का ही आदमी है। सरदार ने घोड़े पर बैठे ही बैठे एक कोड़ा उसकी पीठ पर मार दिया इस मार से आरुणी तिलमिला उठा। उसकी आंखो से अगारे बरसने लगे। अगले वार पर उसने कोड़े सहित ही सरदार को पकड़कर खींच लिया। जब तक दूसरे डाकू संभलते उसने सरदार की ही कटार से उसकी हत्या कर दी। खून में सना चाकू लेकर वह अन्य दस्युओ पर लपका। उसकी वीभत्स काली आकृति और अपने सरदार का शव देख डाकू भागने लगे। तभी एक विचार उसे सूझा। क्यों न वह डाकुओं के दल में शामिल हो जाए? घोड़े पर चढ़कर उसने उन तीन डाकुओं का पीछा किया, "रुक जाओ, मैं तुम्हें कोई हानि नही पहुंचाऊंगा, रुक जाओ।" जब वे न रुके तो कटार निकालकर उसने एक डाकू की बांह पर फेंकी। चोट लगते ही वह घोड़े से गिर पड़ा। उसकी पुकार पर उसके साथी रुके। तब तक आरुणी पहुंच गया। एक डाकू ने कहा, "आखिर तुम चाहते क्या हो? जिसने तुम्हें मारा था उसकी हत्या कर चुके हो। हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"मुझे अपना सरदार बनाओ।"

डाकू अवाक् उसके मुंह की ओर देखने लगे। "अरे मूर्खो क्या देख रहे हो? क्या मैं तुम्हें डाकू नही दीखता। मैं कुरुपाचाल क्षेत्र का विख्यात दस्यु दस मस्तक हूं। दस मुंड मालाएं गले में पहनने के कारण ही मेरा यह नाम पड़ा था। शासन की गतिविधियां अपने विरुद्ध बहुत बढ़ जाने के कारण मुझे वहां से भागना पड़ा।"

डाकुओं का सरदार बनकर उसने अपना नाम दस मस्तक रख लिया। वे उसे अपनी गुफा मे ले गए। वहां झरने पर नहाते हुए वह बड़ी जोरों से हंसा। अपने भयानक अट्टहास का रव सुनकर उसे बहुत खुशी हुई। वह झूठ बोलकर एक झूठे नाम से डाकुओं का सरदार बन बैठा था। वह अधोगति चाहता था। यही अधोगति थी। झूठ, चोरी, हिंसा, आंतक ये ही अब उसकी दिनचर्या थी।

दिन पर दिन उसके हृदय का रोष अपने पिता-माता और मंजरी के प्रति बढ़ता ही गया। इन तीनों को वह अपनी बर्बादी का कारण समझता था। इन तीनो ने उसके जीवन को वह दिशा नहीं लेने दी जो भगवान ने उसके लिए रची

थी। इन्होंने उसकी आत्मा का विकास नैसर्गिक पथ पर नहीं होने दिया। वह खेलना चाहता था तो उसके पिता ने उसे खेलने नहीं दिया। उसकी अवरुद्ध आत्मा को मंजरी ने एक और खेल सिखाया और जब उसने खेलना चाहा तो उसे धक्का देकर अलग हो गई। और मां ने अनुचित शब्दों में तिरस्कृत करके उसकी आत्मा के अंकुरों को कुचल दिया। अगर उसने जरा भी उससे प्यार किया होता और मां के कर्त्तव्य को समझा होता तो वह उसे अपमान और ग्लानि से भरने की बजाय इस विकृति के कारण को ढूंढ़ती और उसे दूर करने का उपाय करती।

उसकी आत्मा में उनके प्रति विद्वेष और प्रतिहिंसा इतने बढ़ गए कि एक दिन उसने गंगाजल हाथ में लेकर अपने वंश को त्याग दिया। वह बोला, "हे वरुण, इंद्र, अग्नि, पूषान, शिव, हे समस्त देवताओं, तुम्हें साक्षी कर मैं अपने वंश का त्याग करता हूं। इसकी किसी भी संपत्ति, भौतिक या आध्यात्मिक, पर अब मेरा अधिकार नहीं है। मेरे पूर्वजों का ज्ञान और तप जीवन-यात्रा में मेरी मदद न करे। मुझे वरदान दो भगवान कि मेरे साथ एक नए वंश के बीज इस धरा पर पड़ें। जैसे कभी गर्ग, भारद्वाज, शांडिल्य, कौशिक आदि ऋषियों ने नए वंशों के बीज डाले थे। मैं नहीं चाहता कि मेरे वंश का आध्यात्मिक रोग मुझे भी मिले। वह रोग जिसने मेरे पिता की साधना को ऐसे अमानवीय क्रोध में बदल दिया मुझे उत्तराधिकार में न मिले। वह सहानुभूतिहीन, पशुओं जैसा मातृत्व जो मेरी मां में है वह मेरी आत्मा से छिन्न हो जाए। मेरी आत्मा तक ये विषधारें न पहुंचें। मुझे सामर्थ्य दो भगवान कि यदि पृथ्वी पर संतान उत्पन्न करूं तो वह एक ऐसा वंश हो जो तुम्हारे प्रेममय स्वरूप की अभिव्यक्ति हो। इन विद्वेषों, मदों और क्रोध की अभिव्यक्ति न हो जिन्हें हम वंश कहते हैं।"

धीरे-धीरे उसमें खाने की लिप्सा, धन की लिप्सा जाग गई। मगर वह केवल लुटेरों को लूटता, केवल पतिताओं से संसर्ग करता।

एक दिन आया जब रम्भा की स्मृति भी उसके क्रोध और प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़काने लगी। वह मुझसे केवल एक पुत्र चाहती थी। अपने उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने मुझे चुना था। उसके अनभिज्ञ तारुण्य को इसके लिए प्रेम का झूठा स्वर्ग दिखाया था। नारी किसी से प्रेम नहीं करती। नारी गर्भ चाहती है और गर्भ तक ही उसकी दिलचस्पी पुरुष में बनी रहती है। उसका चरित्र भी गर्भ पर आश्रित है। उसे गर्भ धर्म मार्ग पर मिला जाता है तो वह सचरित्र रहती

है अन्यथा वह कुछ भी कर सकती है।

आरुणी में बहुत परिवर्तन आ गया था। वह बहुत विचारों में डूबा रहता था। उसकी बुद्धि जैसे हर घटना और हर बात के पीछे कुछ सोचती रहती थी। उसे लगने लगा जैसे हर मनुष्य जो उसके जीवन मे आया उसे उलझनें और मूर्खताएं दे गया। फिर ये दस्यु ही क्या बुरे हैं। इनमें केवल एक अंतर है कि ये साहसी भी है। जो ये भीतर से है वही बाहर भी हैं। इनका अज्ञान, इनकी उलझनें, इनकी लिप्सा, इनके कर्मों मे व्यक्त हैं। उसकी समझ में एक बात बैठ गई थी कि सभी मानवीय संबंध दुःख और पाप के कारण है। वे आत्मा को अपने अज्ञान और उलझनों से लाद देते हैं। उन सबसे मुक्त होना आत्मा के उत्थान के लिए अत्यंत आवश्यक है।

× × ×

एक दिन उसके साथी सत्यव्रत को पकड़ लाए। उनका कहना था कि यह व्यक्ति अमात्य सत्यव्रत था जो वन में संन्यासी बनकर रह रहा था और उसका उद्देश्य गुप्तचरी करके दस्युओं को पकड़वाना था।

सत्यव्रत ने स्वीकार किया कि वह सत्यव्रत था। मगर वह राजकीय सेवा त्याग चुका है और अब वास्तव मे संन्यास लेकर साधना में लीन है।

आरुणी ने अपने साथियों को आदेश दिया कि उसे उसके प्रकोष्ठ मे छोड़ आएं। सत्यव्रत को आश्चर्य हुआ कि दस्युओं का सरदार इतना संभ्रात कैसे है। उसने उसे बहुत कोमल शैय्या सोने को दी।

यद्यपि गुफा मे दिन-भर रहने के कारण कुन्द के घर मिली कालस आरुणी के मुख से हट चुकी थी तथापि बढी दाढ़ी, केशों और दस्यु वस्त्रों में उसे पहचानना कठिन था।

शैय्या पर जाने से पूर्व आरुणी बोला," चिंता मत करो सत्यव्रत। मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करता हूं। सूर्योदय से पूर्व तुम्हें तुम्हारे स्थान पर पहुंचा दिया जाएगा।"

"आरुणी!" सत्यव्रत बोला।

"अच्छा हुआ तुमने मुझे पहचान लिया। अब हम एक और रात दार्शनिक वार्तालाप में गुजार सकेंगे।"

मगर काफी देर तक दोनों चुप रहे। कोई बात शुरू न हो सकी। आखिर सत्यव्रत बोला, "तुम अचानक क्यों गायब हो गए थे! क्या इस पेशे के लिए आरुणी?"

"नहीं मैंने भी उसी काम के लिए राज्य छोड़ा जिसके लिए तुम छोड़ आए।"

"मगर तुम तो दस्यु बन गए" सत्यव्रत हंसा, "इस काम के लिए राज्य छोड़ने की क्या जरूरत थी। यह तो तुम वहां भी कर सकते थे।"

"मैं कायर नहीं हूं जो समाज में छुपकर विष फैलाऊं। इसलिए अपनी कुत्सित वृत्तियों के अनुरूप यह पेशा और जीवन-स्तर चुन लिया।"

"मगर तुम तो आदर्शवादी थे आरुणी। फिर ये कुत्सित वृत्तियां तुममें कहां से आ गईं?"

"हंसी न उड़ाओ आर्य! वह सत्यव्रत जो उस रात मुझे भाषण दे रहा था वह सब कुछ जानता है। वही मेरे इस परिवर्तन का कारण भी है।"

"तो फिर वही सत्यव्रत तुम्हारे एक और परिवर्तन का कारण बनेगा," सत्यव्रत गंभीर आवाज में बोला।

"तुमने मुझे उस रात बताया था कि मेरी कुत्सित वृत्तियां मेरी नहीं थीं बल्कि मेरी आत्मा सो गई थी। मेरा सारा आदर्शवाद मेरा नहीं था। वह दिव्य माताओं का तेज था जिन्हें मैंने मूर्खता वश सात्विक न रहते देकर राजसिक बना दिया था। मगर अब मैंने दिव्य माताओं को उनकी निष्क्रिय सात्विक अवस्था में लौटा दिया है। अब मेरे शरीर में सक्रिय है केवल मेरी आत्मा। और वह कितनी नीच, कितनी कुटिल है वह तुम देख रहे हो। मैंने उसके सारे आवरण हटा दिए हैं। मेरा सारा ज्ञान, मेरा सारा प्रेम, मेरा धर्माचरण मेरा नहीं था। उसे मेरी आत्मा ने दुःखों से निकालकर, तिल-तिल प्रकाश के लिए जलाकर अर्जित नहीं किया था। वह सारा ज्ञान, प्रेम और धर्म दिव्य माताओं की महकती सांसें थीं। मुझ पर उनकी कृपा थी और मुझ मूर्ख ने उन्हें दासी बनाया और इस प्रमादी नीच आत्मा को सो जाने दिया।"

"और वही भूल तुम आज फिर कर रहे हो," सत्यव्रत ने शांत पर तीर की तरह चुभते शब्दों में कहा।

"कैसे ?" आरुणी तिलमिलाया। देखते नहीं मैंने अपने अहंकार के चेहरे से नकाब नोच डाली है। मैंने इसका नग्न रूप सामने रख दिया है। मेरी आत्मा दिव्य माताओं की मदद से सूर्य तक तो पहुंच गई मगर वहा उसके पाप और प्रमाद और भी उग्र हो गए। वह शून्य मे लटक कर रह गयी। तब मैंने जाना कि किसी के सहारे स्वर्ग में पहुंच जाने से भी आत्मा को स्वर्ग का आनन्द नहीं मिलता। उसके कर्म स्वर्ग में उसके लिए उससे भी भयानक नर्क रच डालते है जिसे छोड़ कर वह स्वर्ग में भागा था। जानते हो मैं दस्यु क्यों बना हू ? मैं पाप करना चाहता हूं, खूब पाप जिससे सूर्य मंडल से निकलकर मेरी आत्मा पुन: अपने नरक में आ जाए, सूर्य मंडल का नर्क बन जाना असह्य हो गया है। इससे तो मेरी सारी आशाएं मिट गई। स्वर्ग भी मेरे लिए नर्क बन गया तो मैं किस ओर देखूं ? काश तुम कुछ क्षणो के लिए मेरी जगह होकर मेरी स्थिति का अनुभव कर सकते।"

"तो क्या तुम समझते हो इस तरह तुम इस शून्य या अंधेरे से निकल जाओगे? तुम दूसरी भयंकर भूल कर रहे हो आरुणी। तुम्हारी सबसे बड़ी भूल जीवन में शायद यही रही है आरुणी कि किसी पथ पर चलने से पूर्व तुमने ठीक तरह से जांच पड़ताल नही की कि वह पथ किस मंजिल की ओर ले जाता था। जब चलने को चाह हुई एक उमग उठी और जो राह अपने-अपने आप तुम्हारे आगे आ गई उस पर तुम एक अंधी आशा लेकर बढ गए कि यह जरूर तुम्हें मंजिल तक पहुंचा देगी। मगर राहों के भरोसे जो चलते है उन्हें राहे पूरी दुनिया का चक्कर कटा कर मंजिल पर पहुंचाती हैं। मगर विडंबना यह है कि वे मंजिल पर कभी नही पहुंचते क्योंकि मनुष्य की आयु इतनी कम है कि वह पूरी दुनिया का चक्कर काटने से पहले ही मर जाता है। इसलिए मंजिल पर पहुंचने की नौबत ही नहीं आती।"

"तो मुझे बताओ आर्य मार्ग क्या है ?" आरुणी भूमि पर हाथ जोड़कर बैठ गया।" मैं उपनिषद परम्परा मे तुम्हें नमन करता हूं। मेरी न कोई जाति है न कुल क्योंकि मैं उन सबको त्याग चुका हूं और किसी नए वंश के बीजपृथ्वी के गर्भ मे डाल नहीं पाया हूं। अत: मुझे आरुणी जानकर ज्ञान-दान दो देव।"

सत्यव्रत की मुद्रा अत्यंत गंभीर हो गई। एक क्षण में उसके मुख से वे शिथिल परिहास के भाव चले गए। वह संसारी चमक भी लुप्त हो गई जो उसकी भव्य आकृति पर भी सदा रहती थी। एक गंभीर समुद्र जैसी गहरी आवाज मे उसके मुंह से 'ओम' शब्द का उच्चारण हुआ।

आरुणी को लगा जैसे वह शून्यता की अग्नि जो उसे बरसों से जला रही थी कुछ देर को खत्म हो गई थी। गुफा के द्वार से कोई पवित्र बयार भीतर आकर सत्यव्रत के धवल केशों और त्वचा में बस गई थी। उसके रोम-रोम से तेज फूट रहा था।

"वत्स। तुमने यह प्रणाम करके मेरे साथ जो उपकार किया वह अवर्णीय है। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे जैसा शिष्य गुरु को भी पार लगा देता है। वह सत् जो मैं सयास लेने के बाद भी पकड़ नहीं पा रहा था तुम्हारे प्रणाम के उत्तर में अनायास ही मेरे रोम-रोम से खिंच आया। दरबार का झूठा जीवन जीते-जीते मेरी सारी शक्तियों में वे ही झूठी आदतें पड़ गई थी। परंतु तुम्हारी व्यथा और श्रद्धा देख उन शक्तियों का लय हो गया और यह सत्-शक्ति प्रभु ने मुझे दे दी। अब भीतर का प्रकाश निर्विघ्न बाहरी शक्तियों में प्रकट हो सकेगा।

× × ×

अगले दिन भोर से पूर्व दोनों गुफा को छोड़कर फिर कभी न लौटने को चले गए। एक बार फिर अपनी समस्त सम्पदा को लोष्ठवत् ठुकराकर जाते हुए आरुणी को लेशमात्र भी मोह नहीं हुआ। वे चलते गए बहुत दूर। उन्हें बहुत दूर जाना था। जहा कोई उन्हें पहचान न सके।

आखिर साल के एक बन में जहां कल-कल बहती नदी का शोर और पक्षियों के कलरव के अलावा और कोई नहीं था एक कुटिया बनाकर दोनों रहने लगे। सत्यव्रत ने उससे कहा, "वत्स ! मुझ पर एक उपकार करना मुझे गुरु न कहना हम दोनों मित्र हैं। मैं आयु और अनुभव से सम्पन्न हूं तुम प्रतिभा और यौवन से। हम दोनों की ये सम्पदाएं जब एक हो जाएंगी तो सत्य का जन्म होगा।"

एक दिन सत्यव्रत ने आरुणी से कहा, "आओ हम तुम बन में वृक्ष काटने का काम करें। कुटिया में पड़े-पड़े मन नहीं लगता। हम दोनों की सम्पदाएं अभी मिलकर एक नहीं हो पाई हैं इसलिए हम एक दूसरे के लिए विघ्न बने हुए हैं। और हमें साधना साथ ही करनी है। अलग नही होना है।"

वे दोनो योगी और संन्यासी कम मजदूर ज्यादा हो गये। कभी वृक्ष काटते,

कभी पत्थर तोड़ते, कभी वन के मार्गों पर बरसात में बने गड्ढों को मिट्टी से भरते।

दोनों फिर से सुरापान करने लगे थे। उनके इस विचित्र जीवन-यापन की खबर उस देश के राजा तक पहुँची। पास के एक राज्य से उसका युद्ध चल रहा था। उन पर संदेह किया गया गुप्तचर होने का। राजा ने पूछा, "तुम कौन हो सन्यासी या गृहस्थ ?"

"न तो सन्यासी, न गृहस्थ, न वानप्रस्थ। हमारा कोई आश्रम नहीं है महाराज।"

"फिर मार्ग क्या है तुम्हारा ?"

"हम मार्ग बना रहे हैं राजन्।"

"इन्हें बीस-बीस कोड़े मार कर कारागार में डाल दिया जाए।" राजा ने आज्ञा दी।

"मूर्ख मत बनो राजन्," आरणी ने निर्भीक कड़कते स्वर में कहा, "दम्भ मत करो राजत्व का।"

क्रोध के कारण राजा का मुख मण्डल तमतमा गया। वह कोई आदेश देने ही जा रहा था कि तभी सिद्ध क्षेमनिधि ने सभा में प्रवेश किया। पूरा दरबार, स्वयं राजा भी उसके सम्मान में उठ गया। श्वेत वस्त्रों पर रुद्राक्ष की माला, दमकता मुख-मण्डल योगी की आँखें ज्ञान गर्व से प्रदीप्त थी, "आवेश मे न आओ राजन्। तपस्वियों को अभय दान दो। जिस राज्य में योगियों का अनादर होता है वह शत्रु को प्राप्त हो जाता है।"

"परंतु आचार्य···" महामात्य बोले।

"ये गुप्तचर हैं तुम यही कहना चाहते हो न। नहीं ये गुप्तचर नहीं है। क्षिप्रा के तट पर इनकी कुटिया मैंने देखी है। सूक्ष्म दृष्टि से मैंने इनकी दिनचर्या भी देखी है। ये पथभ्रष्ट योगी हैं। और मैं इन्हे साथ ले जाने आया हूं राजन्। तुम इन्हें मेरे साथ भेज दो।" अंतिम वाक्य कहते-कहते सिद्ध क्षेमनिधि भूमि से दो बालिश्त ऊपर उठ गया। पूरी सभा उसके आध्यात्मिक तेज के प्रभाव से आतंक में झुक गई। स्पष्ट था कि राजदरबार उससे बहुत प्रभावित था और इस राज्य में राजा से भी अधिक सम्मानित पुरुष सिद्ध क्षेमनिधि था।

आरुणी और सत्यव्रत सिद्ध क्षेमनिधि के पीछे-पीछे चल रहे थे। उसने उनसे

एक शब्द भी नहीं कहा था। उसने उनकी रक्षा की थी। परंतु आरुणी का हृदय उसके प्रति घृणा से भरा हुआ था। उसे वह एक दम्भी, पाखण्डी, प्रदर्शन प्रिय योगी लगा था जो स्वयं पथभ्रष्ट था। वे एक नदी के किनारे पहुंचे और बिना पीछे मुड़े योगी क्षेमनिधि ने एक नाविक से उन दोनों को नाव मे ले आने को कहा और स्वय नदी पर चल कर दूसरे किनारे चला गया। अतीव क्रोध और हीनता के भावों से आरुणी का हृदय जलने लगा था। इस बार सिद्ध क्षेमनिधि इन्हीं की ओर देख रहा था। आरुणी ने नजरें फेर ली।

"भद्र। तुम बहुत क्रुद्ध जान पड़ते हो," क्षेमनिधि ने पूछा। उसकी आवाज में कुछ व्यग था।

"आज की शाम तुम मेरे अतिथि हो। मैं तुम्हे योग के चमत्कार से परिचित कराऊंगा। यह भूखण्ड देख रहे हो दूर उस ग्राम तक यह अनुपजाऊ, रेह का क्षेत्र था। अपने योगबल से मैंने इस रेह को जला दिया और उपजाऊ मिट्टी मे बदल दिया। इस क्षेत्र मे वर्षा मेरी आज्ञा से होती है और सूर्य भी मेरी सहिष्णुता की सीमा के अनुसार ही प्रखर होता है। पास के गावों के लोग मुझे ईश्वर का अवतार समझते है। मैंने एक बार एक युवती और एक बालक के मृत शरीरों मे प्राण जगाए। मैं सिद्ध हू और आकाश मार्ग से गमन करता हूं। मैं सब जगह हूं और कहीं नहीं हूं।"

"आपने अपने गुण बताए" आरुणी बोला, "मगर एक गुण अवर्णीय है आपका। आपके शब्द भी आपके अपार दम्भ का वर्णन नहीं कर सकते।"

"हा! हा! हा!" सिद्ध क्षेमनिधि हंसा, "तो मेरा अनुमान गलत निकला। तुम उससे कहीं अधिक मूर्ख हो जितना मैं समझता था।"

"एक अकेले तुम ही नहीं हो सिद्धियों से विभूषित क्षेमनिधि! किसी जमाने मे मैंभी सूर्य तक गया था। उस खेल को आत्मा के विकास में बाधक मान मैं कब का छोड़ चुका हूं..."

"और तब से व्यग्र हूं पृथ्वी पर लौटने को क्यों? हा! हा! हा! हा! हा! हा!"

एक तीव्र भय आरुणी की आत्मा मे कौंधा। विस्मय से उसके नेत्र फैल गए सिद्ध के प्रति एक तीव्र आकर्षण उसकी आत्मा में जागा। उसने चाहा उससे बातें करे। मगर न-जाने कौन-सी शक्ति ने उसे रोक लिया।

कुटिया में पहुंच कर सिद्ध क्षेमनिधि ने एक बड़े पात्र से मदिरा पी। उसने इन दोनों से भी पीने को कहा मगर इन दोनों ने इनकार कर दिया। फिर वह वहीं नाचने लगा। विचित्र हाव-भाव से भरे उस नृत्य की तुलना उसके शिष्य स्वयं नटराज से कर रहे थे। उनकी प्रशंसा मुखर थी। जैसे उनका उद्देश्य अपने सिद्ध को सुनाना था। वे बार-बार कह रहे थे, "भगवान की यह शिव मुद्रा सचमुच अनंत शोभामयी है।" सिद्ध इस प्रशंसा और स्तुति को सुनकर आनंद मग्न हो रहा था। फिर वह बोला, "हां मैं शिव हूं, मैं ही ब्रह्मा हूं। मैं ही विष्णु हूं। आदिकाल में मैंने ही यह सृष्टि रची थी। यह फल और अन्न, पशु, यह रमणीक प्रकृति, ये चन्द्रमा, सूर्य और सुन्दरता की मूर्ति नारी ये सब मेरी ही देन है।"

उसके शब्दों के साथ आभूषणों से सुसज्जित तीन अपूर्व सुंदरियां वहां आईं और उन्होंने सिद्ध को प्रणाम किया। उसमें से एक को देखकर आरुणी के हृदय पर आघात हुआ। वह सुंदरी रम्भा थी। वह वातावरण उसके जिगर से लिपट गया जो कभी उस बंद प्रकोष्ठ में, रोमीय दीप के सुनहरे प्रकाश में महकते उस आवरणहीन रूप से बना रहता था।

उसके बाद सिद्धि क्षेमनिधि उनमें से दो सुंदरियों के साथ एक कक्ष में चला गया। बाहर रम्भा रह गई। आरुणी ने चाहा रम्भा से बात करे मगर तभी एक घोर घृणा और प्रतिहिंसा उसके हृदय से निकल आंखों में बादलों की तरह डोलने लगी।

रात को शयन करते हुए आरुणी और सत्यव्रत में कोई वार्तालाप नहीं हुआ। आरुणी बहुत बात करता यदि सिद्ध ने वह बात कहकर उसके मन को न छुआ होता। उन शब्दों ने सिद्ध को उसकी नजरों में एक रहस्यमय व्यक्ति बना दिया था जिसे वह अपनी बुद्धि से आंक नहीं सकता था। उसके आचरण को वह आसानी से अनैतिक कह देता अगर उसने उस विलक्षण वाक्य में उसकी अंतरात्मा की सारी स्थिति का वर्णन न कर दिया होता। अब तो एक ही उत्सुकता उसके मन में लगी थी। वह सिद्ध क्षेमनिधि से बात करना चाहता था। वह जो उसका रोग जानता है वह उसकी दवा भी जानता होगा। रात-भर इसी उत्कण्ठा में उसे नींद नहीं आई। सत्यव्रत सो गया था। करीब तीन बजे उसने बाहर मंत्रोच्चारण की ध्वनि सुनी। बिजली चमक रही थी। और बादल गरज रहे

एक शब्द भी नहीं कहा था। उसने उनकी रक्षा की थी। परंतु आरुणी का हृदय उसके प्रति घृणा से भरा हुआ था। उसे वह एक दम्भी, पाखण्डी, प्रदर्शन प्रिय योगी लगा था जो स्वयं पथभ्रष्ट था। वे एक नदी के किनारे पहुंचे और बिना पीछे मुड़े योगी क्षेमनिधि ने एक नाविक से उन दोनों को नाव में ले आने को कहा और स्वय नदी पर चल कर दूसरे किनारे चला गया। अतीव क्रोध और हीनता के भावों से आरुणी का हृदय जलने लगा था। इस बार सिद्ध क्षेमनिधि इन्हीं की ओर देख रहा था। आरुणी ने नजरें फेर ली।

"भद्र। तुम बहुत क्रुद्ध जान पड़ते हो," क्षेमनिधि ने पूछा। उसकी आवाज मे कुछ व्यंग था।

"आज की शाम तुम मेरे अतिथि हो। मैं तुम्हें योग के चमत्कार से परिचित कराऊंगा। यह भूखण्ड देख रहे हो दूर उस ग्राम तक यह अनुपजाऊ, रेह का क्षेत्र था। अपने योगबल से मैंने इस रेह को जला दिया और उपजाऊ मिट्टी मे बदल दिया। इस क्षेत्र मे वर्षा मेरी आज्ञा से होती है और सूर्य भी मेरी सहिष्णुता की सीमा के अनुसार ही प्रखर होता है। पास के गावों के लोग मुझे ईश्वर का अवतार समझते है। मैंने एक बार एक युवती और एक बालक के मृत शरीरों मे प्राण जगाए। मैं सिद्ध हू और आकाश मार्ग से गमन करता हूं। मैं सब जगह हूं और कहीं नहीं हू।"

"आपने अपने गुण बताए" आरुणी बोला, "मगर एक गुण अवर्णीय है आपका। आपके शब्द भी आपके अपार दम्भ का वर्णन नहीं कर सकते।"

"हा! हा! हा!" सिद्ध क्षेमनिधि हंसा, "तो मेरा अनुमान गलत निकला। तुम उससे कहीं अधिक मूर्ख हो जितना मैं समझता था।"

"एक अकेले तुम ही नहीं हो सिद्धियों से विभूषित क्षेमनिधि! किसी जमाने मे मैंभी सूर्य तक गया था। उस खेल को आत्मा के विकास में बाधक मान मैं कब का छोड़ चुका हूं..."

"और तब से व्यग्र हूं पृथ्वी पर लौटने को क्यों? हा! हा! हा! हा! हा! हा!"

एक तीव्र भय आरुणी की आत्मा में कौंधा। विस्मय से उसके नेत्र फैल गए सिद्ध के प्रति एक तीव्र आकर्षण उसकी आत्मा में जागा। उसने चाहा उससे बातें करे। मगर न-जाने कौन-सी शक्ति ने उसे रोक लिया।

कुटिया में पहुंच कर सिद्ध क्षेमनिधि ने एक बड़े पात्र से मदिरा पी। उसने इन दोनों से भी पीने को कहा मगर इन दोनों ने इनकार कर दिया। फिर वह वहीं नाचने लगा। विचित्र हाव-भाव से भरे उस नृत्य की तुलना उसके शिष्य स्वयं नटराज से कर रहे थे। उनकी प्रशंसा मुखर थी। जैसे उनका उद्देश्य अपने सिद्ध को सुनाना था। वे बार-बार कह रहे थे, "भगवान की यह शिव मुद्रा सचमुच अनंत शोभामयी है।" सिद्ध इस प्रशंसा और स्तुति को सुनकर आनंद मग्न हो रहा था। फिर वह बोला, "हां मैं शिव हूं, मैं ही ब्रह्मा हूं। मैं ही विष्णु हूं। आदिकाल में मैंने ही यह सृष्टि रची थी। यह फल और अन्न, पशु, यह रमणीक प्रकृति, ये चन्द्रमा, सूर्य और सुन्दरता की मूर्ति नारी ये सब मेरी ही देन है।"

उसके शब्दों के साथ आभूषणों से सुसज्जित तीन अपूर्व सुंदरियां वहां आईं और उन्होंने सिद्ध को प्रमाण किया। उसमें से एक को देखकर आरुणी के हृदय पर आघात हुआ। वह सुंदरी रम्भा थी। वह वातावरण उसके जिगर से लिपट गया जो कभी उस बंद प्रकोष्ठ में, रोमीय दीप के सुनहरे प्रकाश में महकते उस आवरणहीन रूप से बना रहता था।

उसके बाद सिद्धि क्षेमनिधि उनमें से दो सुंदरियों के साथ एक कक्ष में चला गया। बाहर रम्भा रह गई। आरुणी ने चाहा रम्भा से बात करे मगर तभी एक घोर घृणा और प्रतिहिंसा उसके हृदय से निकल आंखों मे बादलों की तरह डोलने लगी।

रात को शयन करते हुए आरुणी और सत्यव्रत मे कोई वार्तालाप नहीं हुआ। आरुणी बहुत बात करता यदि सिद्ध ने वह बात कहकर उसके मन को न छुआ होता। उन शब्दों ने सिद्ध को उसकी नजरों मे एक रहस्यमय व्यक्ति बना दिया था जिसे वह अपनी बुद्धि से आंक नहीं सकता था। उसके आचरण को वह आसानी से अनैतिक कह देता अगर उसने उस विलक्षण वाक्य मे उसकी अंतरात्मा को सारी स्थिति का वर्णन न कर दिया होता। अब तो एक ही उत्सुकता उसके मन में लगी थी। वह सिद्ध क्षेमनिधि से बात करना चाहता था। वह जो उसका रोग जानता है वह उसकी दवा भी जानता होगा। रात-भर इसी उत्कण्ठा में उसे नींद नहीं आई। सत्यव्रत सो गया था। करीब तीन बजे उसने बाहर मंत्रोच्चारण की ध्वनि सुनी। बिजली चमक रही थी। और बादल गरज रहे

थे। शीत का वह प्रभात नदी की ओर से आती हवाओं से स्वयं भी जैसे ठिठुर रहा था।

आरुणी बाहर निकल आया। अकेला क्षेमनिधि लकड़ी की खड़ाऊं पहने बादलों में कौंधती विद्युत को ललकारती, पैनी आंखों से घूर रहा था।

आरुणी को देख वह मुसकराया, "तुम मुझ से क्या चाहते हो?"

"मैं जानना चाहता हूं कि तुमने कैसे जाना कि मैं पृथ्वी पर लौटने को व्यग्र हूं? मैं सचमुच व्यग्र हू। सिद्ध क्षेमनिधि मैं तुम्हारे चरणों में नत हूं। मुझे ज्ञान दान दो।" आरुणी के नेत्र आंसुओं से भर गए "मैं हजारों वर्षों से भटक रहा हूं। जन्म-जन्मातरों से मेरी साधना मुझे सूर्यमंडल तक ले जाकर रोक देती है। मुझे लगता है यह अनेकों जन्मों से दोहराया जा रहा है। और दोहराया जाता रहेगा। जब तक मैं पृथ्वी पर लौटना नहीं सीख लूगा।

सिद्ध क्षेमनिधि की मुद्रा अचानक गंभीर हो गई। वर्षा होने लगी थी। वह आरुणी को बच्चे की तरह बांह से पकड़ एक न्यग्रोध वृक्ष के साये में ले गया। वहां भी बूदें दोनों के केशों और मुख पर पड़ती रही परन्तु पत्तों के कारण पानी कम आ रहा था। कोई प्रकाश नहीं था सिवाय बीच-बीच में चमकती बिजली के। वहां सिद्ध क्षेमनिधि ने जो कुछ कहा उससे आरुणी के जीवन की दिशा बदल गई। उसे स्पष्ट अनुभव हुआ जैसे कालदेश की बनी एक छत थी किसी अदृश्य भवन की जिसमें वह न जाने कितने युगों से कैद था। वह छत आज टूट गई। वार्तालाप के बाद उसे लगा वह मायावी कारागार टूट गया था। और उसके मन-इन्द्रिय वर्षा की बूदों के बीच कूकते मयूरों की तरह नाच रहे थे।

"तुम यह भूल कर रहे हो वत्स की तुम पृथ्वी पर लौटने की चेष्टा कर रहे हो। तुम सूर्यमंडल में कैद नहीं हो। यह तुम्हारी दूसरी भूल है कि तुम अपना कैदखाना वहा ढूढ रहे हो। सूर्य देवता है वह किसी को कैद नहीं करता। तुम इतनी-सी बात में उसकी समदर्शिता को नहीं समझ सके कि हत्यारे और निर्दोष, पापी और धर्मात्मा दोनों पर वह समान रूप से किरणो की वर्षा करता है। अगर तुम्हारा प्रवेश अनाधिकार था तो भी सूर्य तुम्हे कैद करने वाला नहीं। तुम कैद सूर्यमंडल से बाहर निकलकर हुए हो सूर्यमंडल के आगे एक शून्य है। हमारा शरीर ब्रह्मांड का अवतार है इसलिए वह शून्य हमारे शरीर में भी अनुभव किया जा सकता है। वह तुम्हारे यकृत और प्लीहा में है। यह प्रच्छन्न शून्य वास्तव में

तुम्हारा अहंकार है जो शून्य बनकर प्रकट हुआ जिससे तुम इसे पहचान न सको। ऊंचाइयों पर हमें भटकने वाली शक्तियां रूप बदल कर आती है।

"तुम्हारी आत्मा ने चिर कौमार्य और चिरयौवन का अमृत पिया है। यह एक बहुत बड़ी सिद्धी है। तुमने सूर्यमंडल भेदा है। इस गर्व से तुम्हारी आत्मा बौरा गई है। अब वह आगे कुछ नही करना चाहती है। वह आराम करना चाहती है। अपने वैभव को, अपने ऐश्वर्य को महसूस करना चाहती है। वही अभिमान शून्य बनकर तुम्हें जकड़े हुए हैं।"

आरुणी कुछ बोलना चाहता था उसे हाथ से रोकते हुए सिद्ध बोला, "नहीं। कोई मानव गर्दभ नही बोलेगा जब सिद्ध क्षेमनिधि बोलता है।" आरुणी हतप्रभ उसे देख रहा था। यह गाली सुनकर उसे लगा जैसे उसे इसकी जरूरत थी। इससे उसे जरा भी चोट नही लगी।

"देखो माया चतुर्मुखी है। ब्रह्मा जो इस माया के रचयिता है वे स्वयं चार मुंह वाले है। इस माया के तीन मुंह तुम्हे दीखेंगे। चौथा गुप्त, रहेगा। तुम्हारी बुद्धि और भावनाएं तीन के बीच आचरण करेंगी और माया से और बंधती जाएंगी। यह माया उनके लिए सत् बनी रहेगी क्योकि तीन सत् का प्रतीक है ब्रह्मा, विष्णु, महेश। असत् का प्रतीक चार है। यदि माया के किसी रूप से कैद होकर मुक्त होना चाहते हो तो उस तल पर उसके चारों रूपों को खोजो। जैसे ही तुम चौथे गुप्तरूप को ढूंढ लोगे माया-जाल टूट जाएगा। यह मृग-मरीचिका की तरह गायब हो जाएगा। मैं भी सूर्यमडल तक गया हूं, बालक। और मैंने भी वह व्यथा सही है जो तुम आज सह रहे हो। मुझे तीस वर्ष लगे उस जाल को तोड़ने के लिए। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि सिद्ध क्षेमनिधि अभी जीवित है।

देखो उस शून्य के बाद तुम्हारे यकृत प्लीहर में एक ऐसा भय उठा होगा जो एक युवा मां को प्रसव के समय होता है। उस भय के बाद तुम्हारी रुचि और प्रेम दोनों मिट गए होगे। तुम्हें पुरुष और रमणियें फीके लगने लगे होंगे और कोई भी तुममें प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित नहीं कर सका होगा। इस नितांत अकेलेपन, प्रेमहीनता से परेशान होकर तुमने सोचा होगा कि तुम्हारा सूर्यमंडल मे जाना एक गलत कदम था। और तब से तुम पृथ्वी पर लौटने का प्रयास कर रहे हो।

"देखो ये चारो लक्षण जो तुम मे प्रकट हुए इन्हे सत् मत समझो। ये लगते हैं

मगर है नहीं। इन्हें असत् जानो। आओ मैं तुम्हें असत् से लड़ने का तरीका सिखाता हूं। असत् से न तो परेशान होओ, न इस पर क्रोध करो, न भय या घृणा करो, न मोहित होकर इसे सत् मानो। तुम असत् को असत् जानते हुए इसके चारों रूपों का स्वागत करो। इसके बढ़ते मायावी रूप को तुम रोक नहीं सकते। मगर इसका बढ़ना ही इसकी मृत्यु है। जिस तरह चीटियों के पर निकलते हैं तो उनकी मौत आ जाती है। इसी तरह जब असत् बहुत जोरों के साथ तुम्हारी आत्मा पर हावी हो तो उसका स्वागत करो, प्रभु पर विश्वास रखो और जान लो कि असत् उस किशोर बादल की तरह है जिसकी गर्जन उसी की मृत्यु का संदेश है। गरजने के साथ वह मिट जाता है। ये चारो रूप आप ही एक दूसरे को मिटा देते हैं। तुम इनसे मत उलझो इनका स्वागत करो। केवल सत् रह जाता है और सत् ही ब्रह्म है वह ईश्वर है जो हम सब मे प्रेम बनकर बसा है। उस पर है अहंकार का आवरण पड़ता है तो हम उसे आत्मा कहते हैं। इसे सोने मत दो। इसको मिटा दो। इसके मिटते ही वह ब्रह्म जगेगा जो मनुष्य की दुनिया मे घुसते ही प्रेम बन जाता है।"

"तेरी आत्मा इन चार रूपो मे बिखर गई है। अपनी आत्मा का मोह छोड़ना बहुत कठिन है। मगर जो जानते है कि केवल प्रेम ही आत्मा का सच्चा रूप है वे आत्मा के मिटने की चिंता नही करते। यही निर्वाण है। यह महर्षि गर्ग कहते हैं, यही श्रमण पारसनाथ कहते हैं।"

"मेरी भी आत्मा को सिद्धि का अभिमान शिथिल किए हुए है। मुझे भी यह शून्य कैद किए हुए है। मुझ मे और तुम मे अतर सिर्फ इतना है कि मैं इस अभिमान का स्वागत करता हूं। यह जो कुछ कहना चाहता है उसे निर्विरोध खुलकर कहता हूं। इसकी परवाह नही करता कि लोग क्या कहेंगे। यह रोग है और रोग को बांधकर उससे मुक्त नही हुआ जाता। इतनी सिद्धिएं प्राप्त की हैं मैंने। मेरी आत्मा को अभिमान होना स्वाभाविक है। इस अभिमान के कारण मेरी आत्मा मे भय भी है। वह भय मैं राजा को दे रहा हूं। मुझे किसी से प्रेम नहीं है इसलिए इन तीनों सुंदरियों मे प्रत्येक को अलग-अलग कहता हूं कि मैं उससे प्रेम करता हूं जिससे तीनों जानें कि मैं झूठ बोलता हूं। मैं पाखंडी हूं और केवल मिथुन ही तक मेरी उनमे रुचि है अपने घमंड और पाखंड को सबको दिखाकर सूर्यमंडल से आगे के शून्य से गिरकर पृथ्वी पर आने की मेरी इच्छा की पूर्ति होती

है ? लोगों की नजरों में बिलकुल गिर जाना ही सूर्यमंडल से गिर जाना है। मगर इतना करने पर भी मेरी आत्मा के यह चारों रूप अभी तक एक- दूसरे को मार नहीं सके। मेरी साधना में कमी है। आत्मा के ये चारों रूप एक-दूसरे की काट हैं। जिस दिन ये चारों एक-दूसरे को मिटा देंगे मेरी आत्मा इस रूप में मिट जाएगी। और उसका प्रेम रूप मे पुनर्जन्म होगा।"

काल और देश छिन्न हो गए थे। जैसे एक कांच की छत थी जो टूट गई थी। आरुणी ने झुककर सिद्ध के चरणो मे प्रणाम किया। वह उन अश्रुओं को नही देख सका जो सिद्ध की आखों मे आ गए थे। सिद्ध जान गया था कि उसकी बातों के श्रवण मात्र से आरुणी की आत्मा इस कैद से मुक्त हो गई थी। मगर वह इस ज्ञान को लेकर कब से घूम रहा था और आत्मा बद्ध थी।

"तुझे प्रेम मिले वत्स, किसी कुमारी का प्रेम" सिद्ध बोला, "तुम पर भगवान की कृपा हो। तू जा, यहां मत रुक। मेरे पास तुझे और कुछ देने को नही है। तू प्रेम कर। मोक्ष-मार्ग प्रेम-मार्ग है। मोक्ष के द्वार में जोड़े ही घुस पाते हैं, अकेले नहीं।"

आरुणी जब लौटा तो सत्यव्रत सो रहा था। वर्षा रुक गई थी और चिड़ियों ने बसेरा छोड दिया था। आरुणी को आश्चर्य हुआ सिद्ध ने उसे किसी कुमारी का प्रेम पाने का आशीर्वाद दिया था और उसे आज तक किसी भी कुमारी से प्रेम नही हुआ था। मंजरी के प्रति उसकी किशोर वासना मचली थी। उसे मंजरी से कभी प्रेम नही था। उसे हमेशा पृथुल नितंबिनियों ने मोहा जो सबकी सब अन्य की अंकशायिनि थी। उसे यह सोचकर बड़ा अजीब-सा लगा कि वह क्यों आज तक किशोरियों के प्रति विमुख रहा।

उसने सत्यव्रत को जगाया और उससे बिदा ली। वृद्ध और युवा दोनों मित्रों ने एक-दूसरे की आंखों में स्नेह से देखा। दोनों जानते थे उनका साथ रहना व्यर्थ रहा था। उनके रास्ते अलग-अलग थे। उन्हें अपने-अपने अंधेरे अलग-अलग पार करने थे।

आरुणी जैसे ही तपोवन से निकलकर बाहर आया धुंधलके में एक और आकृति उसके पीछे आई। यह रम्भा थी। उसे अपनी ओर हेरते देख कचनार के एक वृक्ष के नीचे वह रुक गई। उसकी आंखें भूमि पर गडी थी। वह लज्जा और ग्लानि की प्रतिमूर्ति बनी खड़ी थी ? कितने ही भाव बरसात में गदले हुए गंगा के

पानी की तरह आरुजी के मन में उठे। वह पतन याद आया जिससे वह गुज
थी। मगर आज उसे रोप नहीं था, न घृणा थी। एक मूक हृदा ने जैसे रम्भा क
आत्मा का पर्दा उठाकर उसे सब कुछ दिखा दिया था।

आरुणी मुसकराया और तब मानो बड़े साहस के साथ वे कोयले की रंग क
गहरी काली आंखें ऊपर उठीं। वह लावण्य-भरा चेहरा आज टूट गया था। व
आज भी बहुत सुंदर था। मगर इस सुंदरता के पीछे, आरुणी को लगा, एक औ
चेहरा था जो काच के कटोरे की तरह टूट गया था।

एक विचार ने आरुणी को अचानक गंभीर कर दिया। उसकी आत्मा ने प्रश
किया, "क्या यह मेरे लिए नहीं टूटी?" आरुणी ने उसके बारे में जो धारणा बन
ली थी एक क्षण में टूट गई। वह समझता था इस नारी ने उसके पौरुष क
निगला था। उसकी किशोरावस्था को वह पथ दिया था जो कभी नहीं फलता
पर आज उसे लग रहा था, नहीं रम्भा का नारीत्व उसके पौरुष को अमर कर
की चेष्टा में एक कली की तरह टूट गया था। उसने उसके पौरुष को निगला थ
मगर अपने हृदय में छुपा लेने के लिए, खा लेने के लिए नहीं। और एक दि
उसी के नारीत्व ने उसके पौरुष को पुनर्जन्म दिया। यदि ऐसा न होता तो उसके
संसर्ग के बाद उसमें एक वीर, साहसी पुरुष के लक्षण न उभरते। मगर उसक
विकास करते-करते रम्भा का नारीत्व टूट गया था। उसकी बाद की चरित्रहीनत
कोई चरित्रहीनता नहीं थी। वह टूटा हुआ नारीत्व था जो अपना सब कुछ खो
चुका था।

आरुणी ने मन-ही-मन उसे प्रणाम किया। नारीत्व का आज एक नया रहस्य
उसने जाना था। केवल माता बनकर ही नारी किसी पुरुष के लिए अपनी जान
की बाजी नहीं लगाती। एक प्रेमिका बनकर भी, गर्भ की कामना करते हुए भी
उसका वही यज्ञ जारी रहता है। रम्भा उससे गर्भ चाहती थी और इस तरह
उसने उसके पौरुष को निगला था। मगर यह सब बाहरी क्रिया थी। भीतर से
उसका नारीत्व उसके पौरुष को अपने में छिपा कर पोषित कर रहा था। अपने
सारे माधुर्य और रहस्यों से उसे सींच रहा था। जब अपना सब कुछ दे दिया
उसने तो आरुणी स्वयं राजधानी चला गया था। आरुणी का अचेतन भांप चुका
था कि रम्भा के पास जो कुछ था वह देकर उसके पौरुष को गहरा कर चुकी है।
उसका नारीत्व अब टूट चुका है।

उसे आत्मग्लानि हुई सोचकर कि क्यों उसने रम्भा को दोष दिया था। रम्भा अपने टूटे नारीत्व को लेकर जीने की कोशिश कर रही थी। अनेक पुरुषों से उसका संपर्क इसी चेष्टा का प्रतीक था। उसका नारीत्व उसी आशा के साथ इस राह पर था कि शायद उनमें से कोई एक उसे संवार दे, फिर से एक कर दे।

× × ×

कई दिनों की यात्रा के बाद वे दोनों तक्षशिला के निकट पारचिनार नगर में पहुंचे। रम्भा मार्ग में बीमार हो गई थी ऊंटों का एक काफिला पारचिनार जा रहा था। उसी के साथ वे पारचिनार नगर पहुंचे। आरुणी ने ऋषिकुल में चिकित्साशास्त्र की विशेष शिक्षा पाई थी उसी को लेकर वह इस नए समाज में प्रविष्ट हुआ। उसने अपने पिता और महर्षि विजयसूरि के साथ शल्य चिकित्सा के कितने ही केस किए थे। तब उसमें उसका मन नहीं था। अब उन्हें उसने याद किया, उनके नोट लिए और घोड़ों और कुत्तों पर, भेड़ों पर अपने प्रयोग किये। एक वर्ष के कठिन श्रम के बाद वह एक सफल शल्य चिकित्सक हो गया। दूर-दूर के लोग उसके पास इलाज के लिए आने लगे। धन की कमी न रही। उसका भवन पारचिनार नगर में सर्वश्रेष्ठ था।

रम्भा के और उसके संबंध बिलकुल बदल चुके थे। रम्भा सिद्ध क्षेमनिधि की प्रेरणा से जीवन-भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले चुकी थी। आरुणी का मस्तक यह जानने के बाद पुन: एक बार क्षेमनिधि के प्रति श्रद्धा से झुका। जब उसने रम्भा को आश्रम में देखा था तो उसने कुछ और ही सोचा था। ऐसे भी लोग इस दुनिया में है जो सच्चे और चरित्रवान होते हुए भी ढोंग करते है चरित्रहीन होने का।

रम्भा आरुणी को प्यार करती थी मगर अब उस प्रेम मे शरीर नहीं था। इस प्रेम को आरुणी नहीं समझ पाया था। उसकी आस्था आज भी यही थी। प्रेम केवल आत्मा का कर्म नहीं है। शरीर द्वारा व्यक्त हुए बिना वह अपूर्ण है। मगर अनुभव ने रम्भा की आत्मा में सत्य को एक-दूसरे ही रूप से उद्घटित किया था। प्रेम शरीर से दूर एक आत्मिक क्रिया है। आत्मा प्रेम समाधि में लीन होकर

तिल-तिल कर विरह वेदना में जलती है। अपने प्रि नहीं करती क्योंकि शारीरिक मिलन उस समाधि को भंग जलते-जलते मिट जाता है। वह प्रेम रूपी ब्रह्म की जागृति मार्ग पर यही निर्वाण है।

इस विकट तपस्या ने रम्भा के व्यक्तित्व को एक औ उसके गोरे मुख पर एक आरुणाई ऊषाकाल की तरह जैसे वह कोई कन्या है जो यौवन में प्रवेश कर रही है वैरागियों जैसे वस्त्र और रुद्राक्ष की माला वीणा और प्र मार्मिक लगते थे। दूर हिन्दूकुश पर्वत के उस पार के गांव भरे उसके गीत गाए जाने लगे थे। संगीत सीखने वालों थी। रम्भा केवल कुमारी कन्याओं को संगीत की शिक्षा

एक दिन सन्ध्या के समय जब दीप जल चुके थे ए पास एक षोडसी को लाया जो रथ से कुचल गई थी और वं बंधी थी। उसके चेहरे पर एक लंबा घाव था जिससे खून पेट कुचल गया था और एक टांग टूट गई थी।

उस कन्या का नाम रोहिणी था। आगन्तुक हिंदू कुश के था। उसकी आंखें विशाल और कुछ-कुछ डरावनी थीं। अ मुद्राओं से भरी एक थैली निकाल उसने मेज पर फेंकी और पुत्री को अच्छा कर दो चिकित्सक। मैं तुम्हें इतनी ही मुद्रा

आरुणी उसे देख मुसकराया उसे अच्छा नहीं लगा कि के लिए स्वर्ण मुद्राओं की इतनी राशि भी कम होगी। उ सरदार अमीर नहीं था मगर गर्वीला था। एक पिता के अधर्म होगा। वह बोला, "इतनी मुद्राओं की जरूरत नहीं आधी निकाल लो। मगर तुम्हें इस कन्या को मेरे औषधाल माह के लिए रखना होगा।"

सरदार का गर्व ढीला पड़ गया था और अब उसमें आया था। यह जान लेने के बाद कि अपनी पुत्री के इलाज काफी मुद्राएं है गर्व की जरूरत नहीं रही थी। हवाओं उन गालों में एक तेज कंपन हुआ। "मेरी बेटी ठीक तो

य में मिलने की चेष्टा
कर देता है। एक दिन
का क्षण होता है। इस

र ही निखार दे दिया था
देख लोगों को लगता था
। उस पर उसके श्वेत
भु भक्ति के गीत, बहुत
में भी प्रेम की पीड़ा से
ी वहां भीड़ रहने लगी
ती थी।

: घुड़सवार आरुणी के
होश घोड़े की पीठ से
जा रहा था। उसका

एक कबीले का सरदार
पनी कमर से चांदी की
आरुणी से कहा, "मेरी
एं और दूंगा।"
उससे कहे कि इस कार्य
सने देख लिया था कि
गर्व को ठेस पहुंचाना
होती भद्र। इसमें से
य में कम-से-कम तीन

एक संतप्त पिता उभर
के लिया उसके पास
और धूप से छिले
ो जाएगी ना?" वह

दीन स्वर में बोला और पिघले शीशे की तरह जलती दो बूंदें उसकी आंखों में आ गई।

"निश्चित रहो।"

सरदार का चेहरा फिर से उसी तरह सख्त और मर्दाना हो गया था। अपनी पगड़ी ठीक करता हुआ वह बोला, "ये आधी मुद्राएं इसके खर्चे के लिए रख लो चिकित्सक।"

आधी मुद्राएं निकाल कर थैली सरदार की ओर बढ़ाते हुए आरुणी ने दूसरे हाथ से उसकी बाह थपथपाई, "इसकी जरूरत नही है सरदार। इस औषधालय मे मरीजों से ठहरने का कुछ नही लिया जाता। ऐसे सभी रोगी हमारे मेहमान होते हैं।"

"मैं कल इसकी मां को भेज दूंगा इसकी सेवा के लिए।"

' इसकी भी जरूरत नही है। देवी रम्भा इन सबकी माता ही तो है।"

सरदार प्रसन्न हुआ कि देवी रम्भा इसी घर में रहती है। निश्चित होकर वह अश्व पर चढ़ा और चल दिया। उसे अभी बदला लेना था दूसरे कबीले वालों से जिन्होंने शत्रुता का बदला उसकी अबोध पुत्री को कुचल कर लिया था।

तब तक भगवान बुद्ध का जन्म नही हुआ था। उस युग में हिंदूकुश के मंदिरों में यक्षपति कुबेर और मणिभद्र की उपासना होती थी। महेश्वर सबके देवाधि देव थे। इन कबीलों तक यज्ञ वल्कय आदि ऋषियों का दर्शन नही पहुंच पाया था। समस्त सृष्टि के पीछे जो एक ब्रहमतत्व चमक रहा है उसकी खबर इन जंगली जातियों को नही थी। ये निर्ग्रंथ मुनियो की पूजा करते थे परंतु मांस-मदिरा का भी सेवन करते थे। ये नागों, यक्षों, अप्सराओं की भी पूजा करते थे। इससे इनके चरित्र में अनेक विरोधो का समन्वय हो गया था। ये मजबूत, सहिष्णु और बात के सच्चे थे। मगर बहुत कठोर भी थे। हत्या उनके लिए मामूली बात थी। शरणागत की रक्षा करना धर्म समझते थे। उसकी रक्षा मे पूरा का पूरा वंश भी यदि मिट जाय हो जाए तो इन्हें मलाल नही था। जीवन को इतने सस्ते दाम देने वाली कोई दूसरी जाति उस समय न थी। इनमे वे सारी शक्तिएं संचित थी जिन्हें यदि सही निर्देशन मिलता तो ये भारत के जातीय चरित्र की आधार शिला बनते। मगर इनके जीवन के तुमुल, अज्ञान और हिंसा के बीच आकर कोई भी ज्ञानी रहने

को तैयार नही था। भारत मे उस समय जगह-जगह आश्रमों में नई दार्शनिक ज्योति जल रही थी। लोग ब्रह्म की जिज्ञासा कर रहे थे। मगर हिंदूकुश के पास के सारे गांव और उनके कबीले इससे बेखबर थे। कुछ निग्रंथ मुनि ही वहां घूमते-घूमते पहुंच पाए थे और उनके प्रभाव के फलस्वरूप उन्होने प्रेम को जीवन का सार और सर्वोत्तम आदर्श मान लिया था। उसके लिए और अपने सम्मान के लिए सब कुछ बलिदान करने मे इन्हें लेशमात्र भी झिझक नहीं थी। पुनर्जन्म में विश्वास इतना गहरा था कि उसको व्यक्त करने के लिए इनकी सरल बुद्धि मृत्यु को मृत्यु नही मानती थी। उसे पुनर्जन्म के नाम से हिंदूकुश के लोग पुकारते थे।

पूरी रात यत्न करते-करते आरुणी और रम्भा थक गए थे। एक लेप उसके पेट और माथे पर लगा कर दोनों आसन पर बैठे सुस्ता रहे थे। तभी रोहिणी ने आंखें खोल दी। वह उठ बैठी। झटके से उठने के कारण उसकी टूटी टांग में तेज दर्द होने लगा और वह जोर से कराही।

उसकी टांग चौड़ी की पतली तख्तियों से फिर बांधी गई। कुछ देर के उत्सुक प्रश्न उत्तर के बाद जब उसने जान लिया कि वह इलाज के लिए औषधालय में है तो वह शांत हो गई और आंखें मूंद लीं।

उसके खुले नेत्रों से नेत्र मिलते ही आरुणी के हृदय मे जैसे भूचाल आ गया। जैसे बहुत से पर्वत टूट-टूटकर मिट्टी बन बह गए। उन आंखों में न मादकता थी न आमंत्रण। उन आंखो में घने जंगलों में बसे अंधेरों का रहस्य और झरनों की ताजगी थी। जैसे वह कोई मानवी नहीं यक्षिणी थी। उनकी आंखों मे चमकते खड्ग की तराश थी। परंतु आंसुओं का जैसे स्रोत उमड़ा पड़ रहा था। वह रो नहीं रही थी। आंसू मचकर उसकी आंखों पर चमकती आब बन गए थे। उसे आश्चर्य हुआ क्या यह लड़की जंगली मधु, फूलों, रसों पर ही जीती थी। जब वह उठकर बैठी तो उसने उसके बाएं कंधे से लेकर बाएं पैर के अंगूठे तक कौमार्य की बिजली को कौंधते हुए देखा था। उसे आश्चर्य हुआ, क्या यही प्रेम था। वही प्रेम जिसका आशीर्वाद उसे सिद्ध क्षेमनिधि ने दिया था। हां शायद वह प्रेम था जो आज तक उसने किसी के लिए नहीं महसूस किया था। वह प्रेम उसकी आत्मा से गहरा था। इसमें उसकी आत्मा जल रही थी। उसका सारा गर्व जल रहा था। उसका सारा ज्ञान जल रहा था। यह कैसी अग्नि थी। आज तक जो भी प्रेम उसे हुआ था वह उसकी आत्मा रूपी टहनी पर खिला फूल था। मगर यह प्रेम तो वह

अग्नि था जिसमें उसकी आत्मा ही जली जा रही थी। जैसे मोम तप कर पिघल जाता है। वह कहां था ? वह कहां जा रहा था ? यह कैसी हलचल थी ? क्षणों में वह कितनी दूर चला गया था। यह सब अनोखा था। ऐसा न पहले हुआ था न जाना था।

अगली सुबह जब वह आया तो रोहिणी ने मुसकराकर उसका स्वागत किया। उन होंठों की मुसकराती बिजली और उसके गालों पर पड़ी रेखाओं को देख उसे लगा ये वो डोरें है जिनसे बांधकर प्रकृति के अगम्य रहस्यों मे अप्सराए अपने कलश उतारती हैं। और यह मुसकराहट वह अमृत है जो वे उस कुएं से खींचती है। उसके होंठ उन्हीं रहस्यों से सारे रस खींच रह हैं।

आरुणी ने झुककर उसके होंठ चूम लिए। न वह लजाई, न रुष्ट हुई। वह फिर मुसकराई और आंखों को मूंद कर लेट गई।

इसके बाद आरुणी का मतवालापन बढ़ता ही गया। वह रोहिणी के बिना रह नहीं सकता था। रोहिणी को इलाज लग रहा था। उसका पिता भी दो बार उसे देख गया था। सुबह शाम अपने मरीजों को देखने मे आरुणी का बहुत समय निकल जाता था। मगर उसे खुशी थी क्योंकि उसके कक्ष से मिले कक्ष में ही रोहिणी थी जो अक्सर वातायान से देख कर उसे विद्युत तरंगो से छू देती थी।

दो माह हो चुके थे। रोहिणी की टांग की हड्डी जुड़ चुकी थी। आज आरुणी ने उसके चेहरे की शल्य चिकित्सा की थी।

आरुणी ने उसे वर्णमाला सिखा दी। रम्भा उसे संगीत की शिक्षा देने लगी थी। दोनों रोहिणी का मन लगाने की जी जान से कोशिश करते थे। रोहिणी खुश थी। उसे आज तक ऐसी आंखो से किसी ने न देखा था। हिंदूकुश के युवक और काफिले वाले जो उसके गांव से गुजरते थे उसे ऐसी नजरों से देखते थे जैसे वह एक दुर्लभ फल थी या कोई कीमती हीरों का हार थी। उनकी आखों की यह प्रशंसा उसे बहुत प्रिय थी। मगर आरुणी की नजरो मे कुछ और था जो उसके हृदय के गुप्त कोनों से एक ऐसे दर्द को जगा देता था जिसका उसे पता नही था। अकेले में यो ही आप ही उसकी आंखो से आसू टूटने लगते थे। वह उनकी वजह जानना चाहती थी पर उसकी समझ मे नही आती थी। वह माता-पिता की चहेती थी, अपने कबीले के युवकों की आख का नूर थी। वरुण के मंदिर में शरद पूर्णिमा को होने वाले नृत्य मे सारी सखियों के बीच उसे ही प्रधान

भूमिका मिलती थी। एक असभ्य, कठिन जीवन के झंझावातों ने उसे बिना किसी आड के जीने की कला सिखाई थी। उसकी बस्ती में युवक-युवतियों से खुला मजाक करते थे और हाथ मे हाथ डालकर नाचना पड़ता था। कठिन वृक्षहीन पथरीली चट्टानो पर बडी दूर पशुओं को अकेले चराने ले जाना पड़ता था। इन सब खुले दरवाजों के बीच, इस नग्न जीवन के बीच, अपने चरित्र की रक्षा कैसे की जाए यह हर लड़की की अपनी समझ और दृढ़ता पर निर्भर था। बहुत-सी इस बहाव में बह जाती थी। पर रोहिणी उनमे नही थी। कुछ और लडके भी उसके अधर चूम चुके थे। वह इसका अर्थ जानती थी। आरुणी के होंठों से उसे वह व्यथा मिली थी जो उसके हृदय की गहराइयो में बसी किसी व्यथा को छेड देती थी। उसे लगता जैसे कोई भूली दु:ख-भरी कहानी है जो याद आते-आते रह जाती है। वह दिल की गहराइयो में कही दफन है और उसे आरुणी का हर स्पर्श, उसकी नजरें, उसके अधर जगा देते हैं। आरुणी उसे कह चुका था कि वह उसे प्यार करता है और वह भी उससे कह चुकी थी कि वह उसे बहुत प्यार करती है। ये सच था। मगर कुछ और भी सच था जो धीरे-धीरे उजागर हुआ और आरुणी की आत्मा एक ऐसी कामना, तड़प-चाहत और आनन्द मिश्रित पीड़ा से गुजरने लगी जो उसके जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी। यह अग्नि उसे ग्रस्त करके कितनी ही बार मृत्यु के भयानक कगार तक ले गई। ये अंधेरे नए थे जो उसे अध्यात्म के ऊचे शिखरों पर भी पहले नही मिले थे। उस दुनिया के दु:ख दूसरी तरह के थे। वहां की खुशियों में भी एक कोमल माधुर्य था जैसे कि किसी ऊंचे पर्वत शिखर पर तेज हवाओं से घिरे मंदिर में एक दीप जल रहा हो और उसकी लौ निर्विघ्न हो, लड़खड़ा न रही हो। मगर प्रेम की इस दुनिया की खुशियों मे भी कटीली पीड़ा था। यहा के अंधेरे इतने भयानक होकर भी हृदय को रोमांचित करते थे। उसे ऐसा लगा यह दुनिया उसके हृदय के आधार मे बसी थी। यह उस आदि युग की दुनिया थी जो उस समय बनी थी जब वह ब्रह्म से अलग हो अपनी यात्रा पर निकला था और फिर प्रकाश खो गया था तब मे यह दुनिया छूट गई थी और फिर वह उस मूल रोशनी को ढूंढ़ता-ढूढ़ता किसी और दुनिया मे आ गया था। इस दुनिय: में सारे दीपों के बुझने का रिवाज था यह उसने अब जाना था। आत्मा के सभी दीपों से अलग यह प्रेम का दीप था जो तभी जलता है जब दूसरे दीप बुझा दिए जाते हैं।

इस राह पर बहुत अपमान भी है। गर्व का मुकुट स्वयं अपने पैरों से कुचलना पड़ता है, यह आरुणी की आत्मा नहीं जानती थी। उसे लगा यह सच था कि उसकी आत्मा सूर्य तक गई थी मगर न जाने कैसे उसका अपना विकास नहीं हुआ था। वह मंजरी के प्रति वासना के उन ग्लानि भरे दिनों के बाद सो गई थी। उसके बाद उसने वस्त्र बदल दिए थे और दूसरे रंगमंच पर आ गई थी। इस प्रेम ने जीवन के इस प्रथम रंगमंच पर सो रहे उस किशोर को जगा दिया था।

एक दिन पहले ही उसकी टांग पर से तख्तिएं हटी थी। रोहिणी का चेहरा पट्टियों से भरा था। पलंग पर बैठी वह खिड़की के बाहर देख रही थी। पूरे चांद की रात थी और भादों के बादल दिन-भर बरस कर अब आकाश के छोरों पर टिके हुए थे। परिचारिका भी जा चुकी थी। उसका मन हुआ बाहर घूमने को। नीरव रात्रि में मेंढक बोल रहे थे। भीगे पत्तों पर चादनी चमक रही थी। बगीचे मे सन्नाटा था। पारचिनार नगर सो रहा था। पास के भवन जो खिड़की से दीख रहे थे उनमें किसी में प्रकाश नहीं था।

वह बाहर आई तो आरुणी भी अपने कमरे से निकल आया।

"आर्य ? शरद पूर्णिमा तक मे अच्छी हो जाऊंगी ?" "जरूर" उसके जाने की बात सोचते ही आरुणी का हृदय चिंतित हो उठता था। वह बोला, "मगर में तुम्हें जाने नहीं दूंगा।"

"जाने की बात तो मैंने नहीं कही।"

"फिर शरद पूर्णिमा को क्या है ?"

"शरद पूर्णिमा को नाच है आर्य। वरुण के मंदिर मे जहां मुझे नाचना है। वह जो पहाड़ियां देख रहे हो तुम उनके पीछे जाना है मुझे।"

"मुझे भी अपने साथ ले चलना रोहू।"

"रोहू तो मछली होती है आर्य" और रोहिणी हंसने लगी। उसका चेहरा पट्टियों से ढका था मगर उसकी आंखों से हंसी छलकी पड़ रही थी।

"तुम भी तो किसी मछली से कम नहीं हो। मेरा हृदय तुम्हारे पीछे कितना भागता है उतना ही तुम अंजान गहराइयों मे खो जाती हो। मैं तुम्हें छू नहीं पाता।"

"लो छुआ।" उसने हाथ बढ़ाया।

आरुणी को उसके भोलेपन पर खुशी हुई। मगर उसी क्षण उसे लगाकि वह

चार्वाकी है। उसकी आत्मा हमेशा आनंद की ही तलाश करती रही है। वह दूसरों के दुःख को बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह दूसरों के दुःख महसूस नहीं करता। वह उन दुःखों को दूर भी करता है तो एक हिंसक की तरह। इसलिए वह सबसे दूर है। वह रोहिणी के पीछे भाग कर भी उसे पकड़ नहीं पाता। वह उसे छू कर भी उससे दूर है।

मगर वह वेदना फिर कौन-सी है जो उसकी आत्मा में रोहिणी के लिए उठती है? वह क्यों हर क्षण उसकी सुरक्षा और उसके कल्याण को सोचता रहता है और उसे क्यों लगता है कि रोहिणी की सुरक्षा केवल उसके साथ है। वह इस मानवी पुष्प को हमेशा इतना ही पवित्र और कौमार्य से सुरक्षित देखना चाहता है। उसने मनुष्य की यह विकृत दुनिया देखी थी। वह चाहता था कि इससे टकराकर रोहिणी की आत्मा न टूटे।

एक प्रश्न उसके मन में उठा! अगर कल रोहिणी भी इसी तरह टूट गई जैसे रम्भा टूटी थी तो क्या उसके हृदय में रोहिणी के लिए यही दर्द रहेगा? उसके पास उत्तर नहीं था। एक शून्य था जो उसकी आत्मा में मुंह बाए खड़ा था।

तो मैं सिर्फ पवित्रता, सत्य का प्रेमी हूं। मैं आत्मिक सुंदरता का प्रेमी हूं। मैं उजले चरित्र, अच्छाई का प्रेमी हूं। मुझे मनुष्य की आत्मा से प्रेम नहीं है। आज मुझे रोहिणी प्रिय है क्योंकि उसमें से ये सभी दिव्य तत्त्व हैं। कल उसके आंचल पर अगर धब्बे पड़ जाएं, उसकी आत्मा कटुता और कांटों से भर जाए तो मुझे उससे प्रेम नहीं रहेगा।

रोहिणी उसकी चुप्पी तोड़ना चाहती थी। मगर इस चुप्पी में कोई रस था जो चुप-चुप उसकी आत्मा पी रही थी। चांदनी में घोलकर। बोलना उसे अनावश्यक लगने लगा। वे अपने-अपने विचारों में खोए घूमते रहे।

यह प्रेम नहीं है, आरुणी की आत्मा बोली। मैंने कभी किसी से प्रेम नहीं किया। मैंने मनुष्य की आत्मा में केवल ईश्वरीय तत्त्वों से प्रेम किया। मगर पृथ्वी पर माया का जाल इतना चालाक है कि ये ईश्वरीय तत्त्व बहुत जल्दी खो जाते हैं। फिर प्रेम ही है जो मनुष्य को इस योग्य बनाता है कि वह उन खोये तत्त्वों का निर्माण अपने अंधेरों से करे। इस तरह वह पृथ्वी पर स्वर्ग की रचना करता है। वे ईश्वरीय तत्त्व इसलिए चले जाते हैं कि मनुष्य पृथ्वी के संदर्भ में स्वयं उनको

रचना करे। पर ऐसा उसने नहीं किया।

इन विचारों से आरुणी उद्विग्न हो गया। तो रोहिणी के प्रति उसका प्रेम उसकी उपलब्धि नहीं था। किसी को भी रोहिणी से प्रेम हो जाएगा क्योंकि अभी उसमें ईश्वरीय तत्त्व सुरक्षित थे। पर एक दिन जिंदगी के सफर में उसकी भी वे निधिएं छिन जायेंगी। तब वह भी औरों की तरह उससे मुंह मोड़ लेगा। उसकी आंखें रम्भा के कक्ष की ओर पड़ीं। इस राह पर रम्भा सत्य के निकट थी।

× × ×

रोहिणी की चिकित्सा का एक अंग टहलना भी हो गया था। आंखों का जख्म काफी भर चुका था। देवी रम्भा उसे दूर तक घुमाने ले जाती थी। एक दिन आरुणी स्वयं रोहिणी को घुमाने ले गया। पारचिनार नगरी से निकलकर वह बन-प्रांत में आ गए। कार्तिक के जंगल धुले-धुले से महक रहे थे। रंग-बिरंगी चिड़ियें फूलों से भरे वन को अपनी खुशी से भरी आवाज से एक अनोखी सजीवता दे रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो वन की एक आत्मा थी और फूलों के रंग उसी का रूप प्रकट कर रहे थे और चिड़ियों के स्वर उसी के गीत थे। चलते-चलते उन्हें कुछ गुफायें मिलीं। कौतूहल वश वे एक गुफा मे घुसे। गुफा में एक बहुत मधुर महक बसी हुई थी। एक कोने मे स्रोत गिर रहा था। वहीं एक समतल बड़े से पत्थर पर फूलों की शैय्या बनी हुई थी। गुफा की दीवारों पर अनेक जोड़ों ने अपने नाम लिख रखे थे। आरुणी समझ गया कि वे प्रसिद्ध प्रणय गुफाओं में आ गए थे जिनकी कहानियां वह बहुत दिनों से पारचिनार मे सुनता आ रहा था। यह गंध जो गुफा मे महक रही थी जरूर किसी कांत कामिनी के अंगराज की थी। शायद रात-भर इस फूलों की शैय्या पर शयन करके वह जोड़ी भोर होते ही चली गई थी। इन गुफाओं में नगर की प्रेम ज्वाला में जलती जोड़ियां आया करती थी।

एक लता में रोहिणी का पांव उलझा और वह एक हलकी चीख के साथ

गिरी। तभी आरुणी ने उसे थाम लिया। उसके ऊपरी अंगों पर केवल एक कंचुकी कसी थी और एक चूनर थी। उन तप्त बाहों का स्पर्श था या उस गुफा में बसी प्रणय आत्मा की करनी थी यह ! आरुणी के मन में नारी के प्रति कामना जो सो चुकी थी शोलो की तरह भडक उठी। उसने कितनी ही बार चिकित्सा मे रोहिणी को छुआ था पर इस स्पर्श में उसे लगा जैसे उसके हाथों की हर धमनी ने रोहिणी की कमर और बाहो की हर धमनी को छू लिया और दोनो का रक्त एक दूसरे की धमनियों में किसी अज्ञात विधि से उड़ल गया। कुछ कहने की जरूरत नहीं थी। रोहिणी की अर्धउन्मीलित पलकों मे भी वह निमंत्रण था जो आरुणी के हृदय मे जल रहा था। दोनों आलिंगन मे बंध गए। आरुणी के कांपते अधर उन तप्त अधरों से लगे और एक लम्बी चूम में रोहिणी की बरौनियें कमान की तरह चढ़ गईं।

"देव !" एक अस्फुट स्वर उसके होंठों पे फूटा। "प्रिये ! मेरी हृदय सम्राज्ञी !"

"नाथ ! मेरे मुकुट !" उसके अंग निढाल हो आरुणी के अंगों में जैसे घुल जाने को विह्वल हो उठे।

दोनों फूलों की शैय्या पर बैठ गए। कुछ देर तक दोनो चुप रहे। एक मंत्रमुग्ध भाव दोनों के चेहरों पर विस्मय और मुसकान बन खेलने लगा।

"तुम्हारी आंखें मुझे डुबा देंगी आर्य।" रोहिणी बोली, "जानते हो जब तुम मेरी चिकित्सा करते हो। मैं तुम्हारी सुंदर आंखें देखती रहती हूं।"

"और मैं दग्ध हूं तुम्हारी रूप शिखा से। हे स्वर्णमयी बाले तुम्हारी सुरभित गंध ने मुझे बौरा दिया। मुझे लगता है मेरा हृदय कभी किसी से प्रेम नहीं कर सका। वह जिद हृदय की तुम्हारे आगे टूट गई। मुझे लगने लगा है यह जिद नहीं तुम्हारी प्रतीक्षा थी। न जाने कब, कितने जन्मों से, मेरे तुम्हारे प्रणय की यह अधूरी कहानी चल रही है।

अवाक्, स्निग्ध, कोमल, क्षत-विक्षत से होंठों को कुछ खोले, विस्मय-भरी काली आंखों की चंचलता से बेखबर रोहिणी सुन रही थी, "सच, सच कह रहे हो तुम ?"

"हां जितना सत्य आरुणी अपने बारे मे जानता है उतना कह रहा है आर्ये !"

रोहिणी हंसी, "पर मैं तो आर्या नहीं हूं। शायद किसी और से बात कर रहे हो तुम।"

"नहीं तो।" एक लज्जा हठात् आरुणी के मुख पर आई।

"अच्छ सच बताओ किसी और से प्रणय किया तुमने ?"

आरुणी ने उसे रम्भा से अपने प्रणय की सारी कहानी कह दी। कुछ देर एक गम्भीरता रोहिणी की भवों पर रही। वह हंसने लगी जैसे चन्द्रमा काले बादलों को केशों की तरह झटक कर सावन की रात में हंस रहा हो।

आरुणी के नेत्रों में एक सत्य चमक रहा था, "प्रिय ! सच में कहूं तुम से मैं स्वार्थी ही रहा। शायद रम्भा के साथ। मुझे प्रेम की पीड़ा तुम्ही ने दी। तुम नहीं जानती रोहिणी तुमने ज्ञान को उजालों से भर दिया। तुम से प्यार करके मैंने जाना ज्ञान स्वयं प्रकाश नहीं होता। बिना प्रेम के वह अज्ञान से बेहतर नहीं है।"

रोहिणी उसके वक्ष से लग गई और आरुणी को उसके हृदय की धड़कन अपने हृदय में महसूस कर ऐसा लगा जैसे वह एक मृगी हो जो बड़ी दूर से भाग कर आई हो।

उसका हाथ उस क्षीण कटि से हट नहीं रहा था। उभरे मेरुदण्ड का बार-बार स्पर्श कर उसे लग रहा था मानो यह रहस्य स्तम्भ उसके कौमार्य का घर था। वहीं उसका कौमार्य तत्त्व सो रहा था। उन्नत उरोज उसके विह्वल वक्षपर निर्मम प्रहार कर रहे थे।

"मुझे कभी बिसराना मत मेरे देवता" रोहिणी बोली, "मैंने वरुण की कसम खाई है मेरा प्रेमी मुझे बिसारेगा तो पर्वत से कूद कर प्राण दे दूंगी।" उसकी आंखें कहते-कहते भर आईं। वह लेट गई और उसने मुह छुपा लिया। फिर कुछ देर बाद उसे उन युवकों के नाम बताए जो हिंदूकुश में रहते थे और उसे चाहते थे। किससे उसका प्रणय कितने दिन चला और कैसे टूट गया कौन अब भी उसे पाना चाहते है। आरुणी को एक शंका हुई, कहीं वह भूल तो नहीं कर बैठा अपना हृदय देने में। कहीं रोहिणी एक अलहड़ गर्वीली लड़की तो नहीं जो प्रेमियों को विजयो-पहार समझ कर उनकी संख्या बढाने मे लगी है।

"तो एक दिन तुम मुझ से भी प्रेम तोड़ दोगी ?" वह बोला।

"हो सकता है" रोहिणी बोली, "यह तो तुम पर भी निर्भर करेगा।"

"वह कैसे ?"

तुम्हारे प्रेम मे आग रहेगी तो मैं जानूंगी तुम चाहते हो। आग बुझ जाएगी तो समझूंगी तुम भी रूप के प्यासे थे।"

"इसके मायने ?"

उसकी ओर करवट लेकर रोहिणी एक क्षण उसे देखती रही। उसकी जंगली आंखों मे एक श्यामल प्रकाश गहरा गया था और उसी के जोर मे आंखों के काले रतन जैसे बोलने लगे थे। "मायने ये" वह बोली, "कि रूप की प्यास बुझ जाती है। प्यार की प्यास पीकर और बढ़ जाती है।"

"कैसे पीते हैं वह अमृत जिसे प्यार युगों तक ढूंढ़ता रहता है ?"

रोहिणी हसी, "जैसे तुम्हारे होंठों ने पी लिया।"

"बस ?"

"हां जैसे तुम्हारे आलिगन ने पी लिया और तुम्हारी आंखों ने पी लिया।"

"और तुमने कुछ नही पिया।"

पहली बार रोहिणी लजा गई। उसकी बरौनियों के नीचे गाल ठुड्डी तक लाल हो गए और उसने मुह छुपा लिया। आरुणी उसे अपनी ओर करवट दिलाने लगा। वह चिढ़ गई। "मैं तुमसे नहीं बोलूंगी अब" उसकी कोमल भवों में क्रोध की रेखायें बढ़ रही थी, "मैं अब कभी तुम्हारे साथ नहीं आऊंगी।"

आरुणी ने उसे मनाने की चेष्टा की पर वह नहीं मानी। उसने भी खीझकर मुंह फेर लिया। कुछ देर वह यों ही पड़े रहे। वह उस झरने का मीठा-मीठा झर-झर शोर सुनता रहा। रोहिणी नहीं बोली हारकर फिर आरुणी घूमा। रोहिणी सो गई थी। उसका किशोरी तन नीद मे और भी बालिका जैसा हो गया था। केवल वे उन्नत उरोज उसके यौवन का उद्घोष कर रहे थे। गुफा के सांवले प्रकाश में उसका उज्ज्वल मुख एक दीप शिखा-सा लग रहा था। बादाम की आकृति के उस मुख पर बस एक हीरे की लौंग नाक के किनारे चमक रही थी। बस यही सज्जा थी।

आरुणी ने उसे जगाया। कुछ देर बाद वह बोली, "बहुत देर हो गई। देखो कितना प्रकाश गुफा में आ गया।" वह अपने केश ठीक करने लगी। मगर जूड़े में माला उससे नहीं लग पा रही थी। आखिर खीझ कर उसने माला पटक दी, "छिः तुम मुझे क्यों लाए यहां ? अब नहीं जाऊंगी मैं। देवी रम्भा क्या कहेगी।"

आरुणी उसे मनाने लगा। बड़ी मुश्किल से उसका शिशुओं जैसा मन माना और वह हंसने लगी। उठने से पहले उसने आरुणी का एक प्रगाढ़ आलिंगन किया। कोई अनोखी गर्मी थी जो उसकी बाहों की जड़ों से फूटकर फिर आरुणी के तन मन को झुलसाने लगी। उसे फिर शैय्या पर लिटा दिया उसने। इस बार आरुणी के आलिंगन में और हाथों मे और तीव्रता और अस्थिरता थी। उसका हाथ इस बार अपनी कमर पर पाते ही रोहिणी बोली, "नही"।

और आरुणी को लगा कि कुमारी देवी त्रिपुर सुंदरी गुफा की छत पर प्रकट हो क्षण-भर को बिजली की तरह चमकी। इसे दैवीय संकेत समझ वह उठा और दोनो चल दिए।

आसक्ति के ये रंग अनोखे थे जो मन पर छाने लगे थे। मेघों की तरह कोई गर्जन दिल मे रहने लगी। बिजली की तरह कोई आग नाभि से कंठ तक जलती रहती। आरुणी को प्यास बहुत लगने लगी थी और किसी भी चीज से बुझ नही पाती थी। आठों याम उसकी सुध रोहिणी मे रहने लगी। वह जैसे उसकी सासें भी सुनता रहता था। रोहिणी बहुत कम बोलती। जब कभी आवाज उसके कानो में पड़ती उसे लगता कि वह आवाज उसके हृदय को छील देती है और फिर भी यह पीड़ा उसे प्रिय से प्रियतर होती गई।

अक्सर रोहिणी उसके आगे गंभीर-सी मुद्रा मे निकलती थी और आरुणी का हृदय कांपने लगता कि वह रुष्ट तो नहीं हो गई। कुछ ही दिनो मे आरुणी का हृदय पूरी तरह रोहिणी की मुट्ठी में आ गया। कभी-कभी आरुणी को लगता जैसे वह परियों की कहानियां सच थी जिनमे राजकुमार को पक्षी बनाकर जादूगरनी ने पिंजरे में बंद कर दिया था। रोहिणी वही जादू जानती थी। अब रोहिणी उसके जीवन का अर्थ और उद्देश्य दोनों थी।

परंतु अपने को इस तरह पराधीन करके भी उसकी आत्मा खुश थी। वह अबोधता में अगर उसके दिल को कुचल भी दे तो भी यह प्रेम करने का उसे पछतावा नही होगा। जीवन मे पहली बार उसका पूरा अस्तित्व एक साथ जल रहा था और जी रहा था। जलना जीना एक ही क्रिया के दोपहलू हैं शायद। आप ही आत्मा में वह एकाग्रता आ गई थी जिसका जिक्र योगी करते है। जिसके बिना ब्रह्म की प्राप्ति नही होती। वह जीवन-भर जिस समाधि के लिए भटकता रहा था वह उसे स्वतः ही मिल गई थी।

रोहिणी के मद और मूर्खता की चोटों से कभी उसके प्राण जलते, कभी उसके मुख पर फूलों की तरह खिलती हंसी देख कोई कमल कली आप ही उसके हृदय में पंखड़ी-पंखड़ी करके धीरे-धीरे खुलती। कभी बाहर की एक पंखड़ी खुलती और फिर अचानक सब से भीतरी पंखड़ी खुल जाती। सब कुछ अनोखा था। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। उसका मन काम में न होते हुए भी वह काम पहले से अच्छा कर रहा था। पर बाहर जाना उसने कम कर दिया था। रोहिणी घर में थी। उसकी आत्मा के सारे आकर्षण तो घर ही थे। रोहिणी भी जैसे मन ही मन चाहने लगी थी कि वह घर छोड़कर न जाए। जब कभी उसे देर हो जाती और वह रात को लौटता उसे लगता रोहिणी अपने कमरे में जाग रही है उसके लौटने तक वह सो नहीं पाती थी। परंतु अब रोहिणी उसके सामने कम आती थी। कभी-कभी आरुणी को यह बात बनावटी-सी लगती। मगर उसकी सूरत देखकर उसे यकीन न होता कि यह छरेरी बाला उसे तंग करने को ऐसा कर रही होगी।

प्रणय कितना अनोखा है। काल जैसे अपनी हर चाल इसके इशारों पर बदल देता है। कुछ ही दिनों में प्रेम बेल के पत्ते मन की ऊंची से ऊंची दीवारों तक आत्मा की ऊंची से ऊंची उड़ान तक फैल गए। प्रेम ही प्रेम ने मानो आत्मा को ऐसे ढक लिया जैसे किसी हंसी ने अपने विशाल डैनों से अपने नए जन्मे बच्चे को ढक लिया हो।

× × ×

शरद पूर्णिमा से चार दिन पहले रोहिणी के पिता उसे लेने आए। रम्भा ने उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि अभी वह यात्रा करने के योग्य नहीं है। रोहिणी प्रतिवाद न कर सकी। आरुणी बाहर था। जब वह लौटा तो उसे यह सब पता चला।

वह एक गृहस्थ बन चुका था। सांसारिक जीवन की समस्याएं और चिंताएं उसे भी जकड़ने लगी थी, उसका मन खिन्न था। सिद्ध क्षेमनिधि ने उसे यह कौन-

सी राह सुझा दी।

"तुमने रोहिणी के पिता को अकेले क्यों लौटा दिया आर्य ? उनसे असत्य क्यों कहा ?"

रम्भा चुप थी। जब भी उसे अपने और आरुणी के विगत संबंधों की याद आती तो उसे अपना आजका जीवन बडा नाटकीय लगता था।

वह बोली, "क्या तुम ऐसा नहीं चाहते थे ?"

कुछ क्षण अवाक् वह उसको ओर देखता रहा। फिर बोला, "चाहता तो था पर···" वह चुप रम्भा के नेत्रों में देखने लगा। तो रम्भा उसके और रोहिणी के संबंधों को जानती है। उसे लगा जैसे वह रम्भा का अपराधी है।

"आर्ये इस जीवन मे मैंने तुमसे प्रेम किया, तुमसे पूर्व भी प्रेम किया और अब रोहिणी से मुझे प्रेम है ऐसा क्यों ? मैंने कभी किसी के प्रति झूठा नही होना चाहा पर फिर ये परिवर्तन क्यों ?"

रम्भा का नारी हृदय रो उठा, "यही दुःख है सौम्य। यही मानव जीवन का दु.ख है। हम एक दूसरे के दुःखो के कारण होकर भी निर्दोष है।"

"जानती हो देवी। मेरे हृदय ने मुझ से कहा मैं भ्रमर हूं। मैं केवल तभी तक प्रेम करता हूं जब तक किसी नारी में पवित्रता, सरलता, सच्चरित्रता है। जब ये नहीं रहते तो मेरा प्रेम खत्म हो जाता है। परंतु यह तो ईश्वर से प्रेम करना हुआ। फिर मनुष्य को माध्यम क्यों बनाऊं ? सीधे ईश्वर से प्रेम क्यों न करूं ? परंतु कठिन तो मनुष्य से प्रेम करना है। जब मनुष्य में गुण न रहे, जब उसमें अहंकार, क्रोध, लिप्सा, चरित्रहीनता जाग जाए प्रेम की जरूरत तो तब होती है। ऐसे व्यक्ति के प्रति प्रेम अनुभव करना ही तप है। ऐसा ही प्रेम आत्मा की संकीर्णता और कर्मबंध को काटता है और उसे ब्रह्म बना देता है। मगर यह प्रेम मेरे पास नहीं है। इसलिए मैं प्रेमी नही हूं, केवल एक भ्रमर हूं ईश्वरीय गुणों को चूसने वाला।"

"तुम्हारा तर्क मेरी समझ से ठीक नही है आर्य आरुणी।" रम्भा बोली, "ईश्वरीय गुणों के प्रति प्रेम स्वभाविक ही नही, उचित भी है। मनुष्य को केवल ईश्वरीय गुणो से ही प्रेम करना चाहिए। जब तक किसी मनुष्य मे वे गुण है उससे प्रेम करना चाहिए। जब न रहे तो उसे छोड़ उससे प्रेम करना चाहिए जिसमें ये गुण हैं। मुझे तुमसे प्रेम की अभिलाषा नही है क्योंकि मैं जानती हूं मैंने

उन गुणों को खो दिया मैं पतित हुई। मुझे तुमसे प्रेम नहीं है क्योंकि इस बार जब तुम मिले तो तुम वह नहीं थे जैसे पहले थे। तुम्हारी कोमलता, तुम्हारी अनुभवहीन पवित्रता जा चुकी थी। मनुष्यों के माध्यम से मुझे वह प्रेम नहीं मिल सकता अब कभी, मैं जानती हूं। इसीलिए मैं सीधे भगवान से प्रेम करती हूं जो पवित्रता, कोमलता, सत्यता, सच्चरित्रता का अगम अक्षय स्रोत है।"

आरुणी के हृदय के किसी कोने में पीड़ा हुई। उसकी आंखें नत हो गई। वह चाहते हुए भी रम्भा की ओर न देख सका। रम्भा उससे कितनी दूर चली गई। कभी उसे लगता था रम्भा आत्मा की इस यात्रा में उसके साथ हमेशा रहेगी। वह कैसे भ्रम में आज तक जीता रहा था। उसे लगता था कि यद्यपि उनके संबंध बदल गए मगर आत्मा की सुबह खोजने की चेष्टा में, रम्भा उसके साथ है। परंतु आज उसने जाना था कि रम्भा कब की अकेली दूर जा चुकी थी अपने नये पथ पर और वह अकेला रह गया था। जीवन-भर वह अकेलेपन से बचता रहा था। तो क्या आत्मा की यात्रा अकेले ही करनी होती है? दो या उससे अधिक मनुष्य मिलकर इस पथ पर नहीं चल सकते?

उसने रम्भा से और कुछ नहीं पूछा। उसके पास प्रश्न बहुत थे। परंतु रम्भा के पास उनका उत्तर नहीं था।

वह स्वयं शरद पूर्णिमावाले दिन रोहिणी को लेकर वरुण देवता के मंदिर में पहुंचा और वहां रोहिणी नृत्य में सम्मिलित हुई और उसी रात दूसरे कबीले के लोग रोहिणी का अपहरण करके ले गए। रोहिणी के पिता भी वहां मौजूद थे। उन्होंने उसे पीछा करने से रोक दिया। वे उसे अपने घर ले गए। रोहिणी की माता पर जैसे इस खबर का कुछ भी असर नहीं था। वह इसे खेल समझकर हँस रही थी। यह उनका रिवाज था और वह लड़का बहुत दिनों से रोहिणी को जानता था। अगर वह उसे पसंद नहीं करेगी तो जरूर लौट आएगी।

आरुणी इन विचित्र चरित्रों को नहीं समझ सकता था। उसके अपहरण के साथ ही उसकी भूख-प्यास भी चली गई थी। उसे आश्चर्य हुआ कि वह रोहिणी के पारचिनार रहते हुए उससे दूर रह सकता था। रोहिणी उसके प्राणों में प्राण बनकर बस चुकी थी। रात-भर वह सो नहीं सका। जरा देर को आंख लगती तभी रोहिणी का ख्याल उसे एक कटार के स्पर्श की तरह जगा देता था।

आखिर बूढ़े दंपत्ति को सोता छोड़ वह चल दिया। मगर आगे उसे मार्ग न

मिल सका और एक मंदिर के चबूतरे पर उसे रात गुजारनी पडी। अगले दिन वह उस गांव मे पहुंच गया और उस कबीले में अपने एक परिचित के घर ठहर गया। उन लोगों को पता चला तो उन्होंने उस व्यक्ति से कहा,"हमारा दुश्मन हमे दे दो।" उस कबीले वाले ने इनकार कर दिया और फिर संघर्ष में उसके तीनों बेटे मारे गए। आरुणी उन्हें गली मे लड़ता छोड़ किसी तरह छतों के मार्ग से रोहिणी तक पहुंच गया। रोहिणी उसे देखकर खुश हुई मगर उसने उसके साथ जाने से इनकार कर दिया। आरुणी को एक गहरा आघात लगा। उसने उसे याद दिलाया कि वे प्रेम के बंधन मे बंध चुके थे। रोहिणी या तो सब भूल चुकी थी या जान-बूझकर भुला रही थी। वह हंसी और बोली, "वह सब खेल था। मुझे तुमसे प्रेम नही था। कभी नही था।"

आरुणी लौट आया। उसका हृदय खिन्न और निराश था। रोहिणी का आचरण उसकी समझ के बाहर था। उसने रोहिणी का क्या बिगाड़ा था ? उसने उससे प्रेम करके उसके प्रेम को इतनी मामूली सस्ती चीज क्यों समझा ? पुराने कपड़ो की तरह उसके प्रेम को क्यों फेंक दिया ? उसकी आंखों की चमक याद आई। उस कैद में उसकी आख जंगली हिरनी की तरह चमक रही थी। क्या वास्तव में कैद उसका घर रहा था रोहिणी के लिए ?

रम्भा भी ज्यादा दिन न रुक सकी। एक दिन वह उससे विदा लेकर तपस्या के लिए हिमालय चली गई। रम्भा अपने तप से बहुत ऊपर उठ गई। कुछ ही वर्षों में उसका नाम आर्यावर्त के प्रसिद्ध ऋषियों में लिया जाने लगा।

× × ×

इन नए दुःखों ने, मनुष्य चरित्र से इस नए परिचय ने आरुणी की आत्मा को ध्वस्त कर दिया था। उसे लोगों के जीवन मे केवल सुखो की तलाश दिखने लगी। शाश्वत मूल्य कहीं नही थे। ऋषिकुल में उसने जिस आदर्श मनुष्य की शिक्षा पाई थी उसके लिए इस दुनिया में कोई जगह नही थी। ऐसे आघात और उपहास उसे मिले थे कि उनकी सत्ता डगमगा गई थी। शायद रम्भा सही थी। प्रेम मार्ग

भी सन्यास मार्ग ही था। मनुष्यों की दुनिया से दूर रहकर ही हमारी आत्मा प्रेम की अग्नि से अपना विकास कर सकती थी। मनुष्यों की दुनिया इस यज्ञ को कठिन ही नही करती, इसे नष्ट कर देती है। नए संदेह थे। आज तक मूल्यों की सत्ता में संदेह नही रहा था।

अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए वह सामान्य जीवन के निकट आया। जितना वह इसके निकट आया उतनी ही उसमें इसके प्रति घृणा जगती गई। कुछ भ्रष्ट दार्शनिकों के विचार उसने बहुत पहले भी सुने थे और उन पर वह हंसा था। उसे अनुभव ने सिखाया कि वे विचार हंसने के लिए नही थे। वे कुछ दार्शनिकों के दिमाग का पागलपन नही थे। उन विचारों का सामान्य लोग अपने जीवन में अपनाए हुए थे। उसकी प्रेम राह वनों को नहीं जाती। उसने अपना रास्ता मनुष्य प्रेम मे चुना था। अत: मनुष्यों के साथ उनका प्रिय दर्शन लोकायत आज उससे उस हंसी का पूरा बदला लेने के लिए आ गया था।

धीरे-धीरे एक परिवर्तन उसमे आने लगा। उसके अपने आदर्श टूट गए। लोकायत मार्ग उसने अपनाया नही मगर उसकी आत्मा में वह सत् बनकर बस गया। समाज के जीवन में उसने चार प्रवृत्तियां देखीं। लोग केवल सुखों से प्रेरित होकर काम करते है। आत्मा में, सत्यं शिवं सुंदरम् में, ब्रह्म में उनका जीवन-विश्वास नही रखता था। इनमें उन्हें केवल दिमागी दिलचस्पी थी। उनके कर्म इस विश्वास को व्यक्त नही करते थे। उनमे दूसरी प्रवृति थी अपने से शक्तिशाली से डरना। उन शक्तिशालियो में लुटेरे, राजा, वर्षा, हवा, भाग्य समान रूप से थे। तीसरी प्रवृति थी इन शक्तियो को खुश करने की प्रेरणा, प्रशंसा से, भेंट से, अन्न से, पूजा से,। चौथी प्रवृत्ति थी इन शक्तियों में अविश्वास की। इतनी खुशामद, भेंटों के बाद भी हमेशा समय पर वृष्टि नही होती, हमेशा दुर्भाग्य नहीं टलता। अत: ये विश्वासके योग्य नहीं थी।

उसने अनुभव किया कि साधारण मनुष्य का मस्तिष्क इससे ऊपर नही उठ पाया था। विचार उसके लिए पदार्थ की, शरीर की एक क्रिया मात्र थी। जैसे कत्थे चूने पान के मिलने से लाल रंग आ जाता है वैसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु से मिलकर बने जीवन से विचार पैदा हो जाते है। रोहिणी भी इसी परम्परा मे पली थी। उसके मौन तथा मुसकराहटो को, उसकी प्रेम से तप्त सांसों को वह कितना गलत समझा था। वह समझता था कि उसके सरल जीवन में प्रेम का

दिव्य तत्त्व खिल गया था। मगर यह उसके चंचल मन और इंद्रियों का खेल मात्र था। उसे इस अपहरण से एक और उत्तेजना मिली थी। वह उसे छोड़कर इस जीवन में नहीं आना चाहती थी।

मनुष्यों की इस विकृति की सोचते-सोचते उसे घृणा होने को होती। ऐसा क्यों? जब उत्तर मिला तो उसके उद्‌भ्रान्त मन को कुछ शांति मिली। यह घृणा सबूत थी इस बात का कि लोकायत पूर्ण दर्शन नहीं था। यह पूरे मनुष्य चरित्र को व्यक्त नहीं करता। मनुष्य चरित्र में कुछ बच रहता है जिसे इन विचारों पर घृणा होती है। इस तत्व को इनसे नफरत है। एक खुशी उसके मन में उठी। यही लोकायत की पराजय है। मैं तैयार हुआ इस दर्शन को अपनाने को। मैं जिद कर रहा था इसके विरुद्ध। यदि यही सत्य है तो यही सही। वह इन विचारों के प्रति अपना विरोध इस तरह प्रकट कर रही है। लोकायत भूल है। यदि रोहिणी का जीवन दर्शन यही है तो यह उसकी भूल नहीं है। वह इस परम्परा में पली है। उसकी आत्मा इस परम्परा में दब गई है। उसे ऋषिकुल का वह वातावरण नहीं मिला वरना उसे भी अपने इस आचरण से घृणा होती। मैंने उससे प्रेम किया है। वह मेरे जीवन की पूरी भूमि में समा गई है। उसके हित में ही मेरा हित जुड़ गया है। मैंने दो मनुष्यों की आत्मा को पारस्परिक लय में ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग जाना है। मैं लौटकर रम्भा के मार्ग पर नहीं जा सकता। मनुष्य आत्मा को छोड़कर सीधे ईश्वर से प्रेम करना मेरे स्वभाव के विपरीत है। मुझे रोहिणी की मदद करनी है। मुझे उसकी सोई आत्मा को जगाना है जिससे वह स्वयं अपने इस लोकायती, पदार्थवादी विश्वास से घृणा करने लगे और जान जाए कि ये झूठ हैं। मगर कुछ दिनों के अभ्यास से ही वह समझ गया कि इस घृणा से किसी का कल्याण नहीं होना है। इसी घृणा के कारण लोकायत सिद्धांत मनुष्य जीवन में अमर हो गया। वेदों ने कहा है कि सत् को असत् घेरे हैं। असत् को जीतने का एक मात्र मार्ग यह है कि सत् असत् के अस्तित्व को स्वीकार न करे। आत्मा सत् है। वे जिस चीज के अस्तित्व स्वीकार कर लेगा वह सत् बन जाएगा। मेरी आत्मा लोकायत से घृणा करके उसे सत् बना रही है। घृणा, आलोचना तथा सहमति हम तभी प्रकट कर सकते है जब उस चीज के अस्तित्व को मन में लें। इस तरह पदार्थवाद को केवल वे ही सत् नहीं बना रहे हैं जो मूर्खतावश उसमे विश्वास करते हैं। वे दार्शनिक भी उसे सत् बना रहे है जो पदार्थवाद की आलोचना करते

हैं, उस पर रोष प्रकट करते हैं, उससे घृणा करते हैं या उससे भयभीत हैं।

फिर क्या करूं ? यह प्रश्न लिए उसकी संतप्त आत्मा कुछ दिनों तक घूमती रही। तब एक दिन आत्मा की गहराइयों से उत्तर आया तू पदार्थवाद की इन चारो प्रवृत्तियो का स्वागत कर, इनकी अमृत कामना कर। जो है ही नही और माया प्रपंच दिखा रही है तू उससे घृणा क्यों करता है। तू अपनी आत्मा मे नकारात्मक शक्तियों को क्यों जगाता है। अमृत जगा। उनकी कल्याण कामना कर। तटस्थता का यही एक मार्ग है जो महान ऋषियों ने तुझसे पहले भी अपनाया है। उदासीनता तटस्थता नही है। उदासीनता घृणा का ही एक रूप है। तू उदासीन होकर भी लिप्त होगा। पदार्थवाद की अमृत कामना कर। इससे तेरी आत्मा इस प्रपंच से अलग हो जाएगी। तब ये चारो प्रवृत्तिया एक-दूसरे को काट देंगी। असत् के रंग उड़ जाएंगे। उसकी जगह कुछ नही रह जाएगा केवल सत् रह जाएगा जो तेरी आत्मा है।

इस संघर्ष से तेरी आत्मा को विश्वास होगा। पदार्थवाद की अमृत कामना करके तेरी आत्मा इसके विषों को पचाना सीख जाएगी। वह और पुष्ट हो जाएगी।

× × ×

आहत होकर मर्मांतक चोट खाकर उसने जाना कि प्रेम एक समाधि है, एक एकाग्रता है। बस अंतर इतना हैं कि यह समाधि आप ही लग जाती है आत्मा में। इस समाधि को रोहिणी ने तोड़ दिया था। रोहिणी के शब्द-बाणो ने उसकी यह गहरी तंद्रा तोड़ दी थी। प्रेम ने उसकी आत्मा को एकासुर में बांध रखा था। वह एकाग्रता इन निर्मम प्रहारों से टूट गई। इसके साथ ही उसे लगा उसकी आत्मा के कितने ही टुकड़े हो गए जिनमें कोई सो रहा था कोई जाग रहा था। उन पर उसका कोई वश नही रहा था।

उसे बहुत क्रोध आया रोहिणी पर। वन की अन्य विघ्नकारी शक्तियों की तरह ही वह थी। उसने अपनी अनार्यता का प्रमाण दिया था। अनार्य सचमुच ईश

विरोधी है। अगर वह आर्य होती तो कभी भी प्रेम समाधि न तोड़ती। पूर्वजो का तप उसे इस जघन्य दुष्कर्म से रोक देता।

और उसे आश्चर्य था कि रोहिणी को इसका अहसास भी नही था। वह आत्मा के उस हीन सोपान पर भी जहां उसे एक आत्मा के रूप में अपने प्रथम कर्त्तव्यों का भी ज्ञान नहीं था। वह क्या समझती है अपने को ? उसका सौंदर्य सारा उसका तो नही है। मेरी आत्मा ने भी उसे सौंदर्य दिया है। वह इतने गर्व से भर गई। वह भूल गई कि जिस दिन मेरी आत्मा उसमें सुंदरता देखना छोड़ देगी। उस दिन दुनिया के लोगों को भी उसमें सुंदरता दीखनी बंद हो जाएगी। यह मेरी आंखों का प्रकाश था जो उसमें सौंदर्य बनकर बस गया था। एक घृणा उसके हृदय में उठी इस संस्कारविहीन, मूर्ख, गर्वीली अनार्य बाला के प्रति।

मगर कुछ दिनों बाद उसका क्रोध जाता रहा। एक दिन उसे लगा यह क्रोध का जाना कोई आध्यात्मिक विजय नही थी उसकी। यह क्रोध निशानी था इस बात की कि प्रेम समाधि अभी लगी हैं वह टूटना नहीं चाहती। उसकी यह चेष्टा ही क्रोध बनकर प्रकट हो रही थी। जब समाधि पूरी तरह टूट गई तो न क्रोध रहा न घृणा। उसे आश्चर्य हुआ, वह कभी-कभी सोचता कि रोहिणी ने ठीक ही किया। वह बहुत अल्पायु है उसकी अपेक्षा। उसे खुशी थी यह देखकर कि उसकी आत्मा सत्य के निकट थी। जिसने उसका दिल तोड़ा था वह निष्पक्ष हो उसके पक्ष में सोच सकता है। तब वह नहीं जानता कि यह विचारों की उदारता या सत्य ग्राहिता नहीं है। प्रेम समाधि टूट चुकी है। उसके साथ आत्मा प्रेम के मूल्यों से अपरिचित हो गई थी। उसे अब इतना भी अहसास नही रहा था कि उसने क्या खो दिया था। जीवन की मणि खो गई थी और जीवन एक अंधे सर्प की तरह 'अपना जीवन' सिर पटक-पटक कर बिताने की तैयारी कर रहा था।

जब उसे इसका भान हुआ तो उसे लगा प्रेम समाधि की इस टूट के साथ ही उसमें मूर्खता भी जगी थी। वह प्रेम के मूल्यों से अपरिचित होकर साधारण लोगों का व्यर्थ की हंसी-खुशी से भरा जीवन बिता रहा था। उसकी खुशियां और दुःख आत्मा का विकास करने वाले नही थे बल्कि उसे व्यर्थ करने वाले थे। वह साधारण लोगों जैसा जीवन जीने लगा था।

तब एक दिन उसे लगा पूर्वजों की पुकार आई थी। मस्तिष्क से उतर कर

हैं, उस पर रोष प्रकट करते है, उससे घृणा करते हैं या उससे भयभीत हैं।

फिर क्या करूं ? यह प्रश्न लिए उसकी संतप्त आत्मा कुछ दिनों तक घूमती रही। तब एक दिन आत्मा की गहराइयों से उत्तर आया तू पदार्थवाद की इन चारों प्रवृत्तियों का स्वागत कर, इनकी अमृत कामना कर। जो है ही नहीं और माया प्रपंच दिखा रही है तू उससे घृणा क्यो करता है। तू अपनी आत्मा में नकारात्मक शक्तियों को क्यों जगाता है। अमृत जगा। उनकी कल्याण कामना कर। तटस्थता का यही एक मार्ग है जो महान ऋषियों ने तुझसे पहले भी अपनाया है। उदासीनता तटस्थता नहीं है। उदासीनता घृणा का ही एक रूप है। तू उदासीन होकर भी लिप्त होगा। पदार्थवाद की अमृत कामना कर। इससे तेरी आत्मा इस प्रपंच मे अलग हो जाएगी। तब ये चारो प्रवृत्तियां एक-दूसरे को काट देंगी। असत् के रंग उड़ जाएंगे। उसकी जगह कुछ नही रह जाएगा केवल सत् रह जाएगा जो तेरी आत्मा है।

इस संघर्ष से तेरी आत्मा को विश्वास होगा। पदार्थवाद की अमृत कामना करके तेरी आत्मा इसके विषों को पचाना सीख जाएगी। वह और पुष्ट हो जाएगी।

× × ×

आहत होकर मर्मांतक चोट खाकर उसने जाना कि प्रेम एक समाधि है, एक एकाग्रता है। बस अंतर इतना हैं कि यह समाधि आप ही लग जाती है आत्मा में। इस समाधि को रोहिणी ने तोड़ दिया था। रोहिणी के शब्द-बाणों ने उसकी यह गहरी तंद्रा तोड़ दी थी। प्रेम ने उसकी आत्मा को एकासुर में बांध रखा था। वह एकाग्रता इन निर्मम प्रहारों से टूट गई। इसके साथ ही उसे लगा उसकी आत्मा के कितने ही टुकड़े हो गए जिनमे कोई सो रहा था कोई जाग रहा था। उन पर उसका कोई वश नहीं रहा था।

उसे बहुत क्रोध आया रोहिणी पर। वन की अन्य विघ्नकारी शक्तियों की तरह ही वह थी। उसने अपनी अनार्यता का प्रमाण दिया था। अनार्य सचमुच इन

विरोधी है। अगर वह आर्य होती तो कभी भी प्रेम समाधि न तोड़ती। पूर्वजों का तप उसे इस जघन्य दुष्कर्म से रोक देता।

और उसे आश्चर्य था कि रोहिणी को इसका अहसास भी नही था। वह आत्मा के उस हीन सोपान पर भी जहां उसे एक आत्मा के रूप में अपने प्रथम कर्तव्यों का भी ज्ञान नहीं था। वह क्या समझती है अपने को ? उसका सौंदर्य सारा उसका तो नहीं है। मेरी आत्मा ने भी उसे सौंदर्य दिया है। वह इतने गर्व से भर गई। वह भूल गई कि जिस दिन मेरी आत्मा उसमें सुंदरता देखना छोड़ देगी। उस दिन दुनिया के लोगों को भी उसमें सुंदरता दीखनी बंद हो जाएगी। यह मेरी आंखों का प्रकाश था जो उसमें सौंदर्य बनकर बस गया था। एक घृणा उसके हृदय में उठी इस संस्कारविहीन, मूर्ख, गर्वीली अनार्य बाला के प्रति।

मगर कुछ दिनों बाद उसका क्रोध जाता रहा। एक दिन उसे लगा यह क्रोध का जाना कोई आध्यात्मिक विजय नहीं थी उसकी। यह क्रोध निशानी था इस बात की कि प्रेम समाधि अभी लगी है वह टूटना नही चाहती। उसकी यह चेष्टा ही क्रोध बनकर प्रकट हो रही थी। जब समाधि पूरी तरह टूट गई तो न क्रोध रहा न घृणा। उसे आश्चर्य हुआ, वह कभी-कभी सोचता कि रोहिणी ने ठीक ही किया। वह बहुत अल्पायु है उसकी अपेक्षा। उसे खुशी थी यह देखकर कि उसकी आत्मा सत्य के निकट थी। जिसने उसका दिल तोड़ा था वह निष्पक्ष हो उसके पक्ष मे सोच सकता है। तब वह नही जानता कि यह विचारों की उदारता या सत्य ग्राहिता नहीं है। प्रेम समाधि टूट चुकी है। उसके साथ आत्मा प्रेम के मूल्यों से अपरिचित हो गई थी। उसे अब इतना भी अहसास नही रहा था कि उसने क्या खो दिया था। जीवन की मणि खो गई थी और जीवन एक अंधे सर्प की तरह 'अपना जीवन' सिर पटक-पटक कर बिताने की तैयारी कर रहा था।

जब उसे इसका भान हुआ तो उसे लगा प्रेम समाधि की इस टूट के साथ ही उसमें मूर्खता भी जगी थी। वह प्रेम के मूल्यों से अपरिचित होकर साधारण लोगों का व्यर्थ की हंसी-खुशी से भरा जीवन बिता रहा था। उसकी खुशियों और दुःख आत्मा का विकास करने वाले नही थे बल्कि उसे व्यर्थ करने वाले थे। वह साधारण लोगों जैसा जीवन जीने लगा था।

तब एक दिन उसे लगा पूर्वजों की पुकार आई थी। मस्तिष्क से उतर कर

हृदय मे पूर्वज पुकार रहे थे। आर्य ऋषियो की एक परम्परा पुकार रही थी। एक क्रोध उसके शरीर मे जल रहा था यह पूर्वजों का क्रोध था। क्योंकि उसने अनुशासन तोड़ दिया था। एक अज्ञात प्रेरणा वश वह इस क्रोध की अमृत कामना करने लगा। कुछ दिन बाद उसे लगा अब यह उर्ध्व दिशा से आनेवाला पूर्वजों का क्रोध तो थम गया मगर एक और क्रोध अब मूलाधार से उठ रहा था। यह घृणा से, विद्रुप मे भरा था, सासारियो के प्रति जिनमे अहंकार है, जो प्रेम समाधि तोड़ते हैं, जो मानवीय मूल्यों के शत्रु है।

यह क्रोध एक चुम्बक की तरह उसकी आत्मा को खीच रहा था मानो जिस नर्क से यह उठा था वही उसे ले जाना चाहता था। संस्कारों ने उसे सचेत किया। कहते है पूर्वज हमारी रक्षा करते हैं, आत्मिक यात्रा के हर मोड़ पर, शायद उन्हीं पूर्वजो ने उसकी मदद की थी।

इन अनुभूतियों के बीच एक नया मंथन उसकी आत्मा में लग गया था। इन घटनाओ और अनुभूतियों के अर्थ बदल गए है। रोहिणी के प्रति न रोष रहा, न घृणा और न ही उसके पक्ष में कोई तर्क रहा। इन घटनाओं की जननी रोहिणी नही है। कोई बड़ी शक्ति है जो रोहिणी की कमजोर, असुसंस्कृत आत्मा मे जाग गई है ? यह शक्ति सुरसा है। यही माया है। प्रबल होकर इसने रोहिणी के चरित्र को ग्रस लिया है। यह एक चुनौती दी है प्रारब्ध ने आरणी को और इसका सामना करने की बजाय वह उदासीन हो गया। स्वयं रोहिणी की आत्मा खतरे मे है। अज्ञान और विनाश के अजगर ने उसकी आत्मा को जकड़ लिया है। क्या ऐसे समय में उसकी सहायता न कर वह ऋषि पूर्वजो को लज्जित करेगा। उसने प्रेम किया है। उसे यह यज्ञ पूरा करना ही होगा। इस माया नगरी से केवल अपने ही को नही रोहिणी को भी निकालना है। और यह तभी संभव हो सकेगा जब वह इस टूटी हुई प्रेम समाधि को जोड़ना सीखेगा। यही आर्य पूर्वज युगों से करते आए हैं।

उसे लगा इस प्रेम समाधि का टूटना भी अवश्यभावी था। यह स्वतः लग गई थी। इससे सिद्ध था यह नमूना था, एक मॉडल था जो ईश ने उसे दिखाया था उसके बाद ईश ने उस मॉडल को तोड़ दिया। यही तरीका आत्मा के विकास का है। अब उसकी आत्मा को अपनी ही समझ, सच्चाई, शिवं का सहारा लेकर, तप द्वारा इसी प्रेम समाधि को लगाना है। यही ब्रह्म की इच्छा है, यही उसकी आज्ञा

है। इस चेष्टा में आत्मा प्रकाशित होती है, अंधेरों से पुनर्जन्म लेती है।

प्रेम तप है। उसे रोहिणी को भी अपने तप द्वारा इस संकट से उभारना है अन्यथा उसे क्षमा नहीं मिलेगी। ज्ञान-मार्ग उसका है रोहिणी का नहीं। अतः यह कर्त्तव्य भी उसका है कि आत्मा की इस अंधेरी रात में वह दोनों की रक्षा करे तब भी जब रोहिणी स्वयं अंधेरों से मिल कर उस पर प्रहार कर रही हो।

एक अदृश्य मृगछाल से, उसकी आत्मा मन के अंधेरों में बैठ चुकी थी, किसी गहन समाधि में। "जब प्रेम का आलोक न हो तो बुद्धि के आलोक में चलो। एक दिन प्रेम का खोया प्रकाश इसी रास्ते मिल जाएगा।"—ऋषियों की यह वाणी ही एकमात्र सहारा थी इस अज्ञानतिमिर में।

बाहर से जीवन की क्रियायें पूर्ववत् थी। वह एक चिकित्सक के कर्त्तव्य कर रहा था। पर भीतर मन के प्रकोष्ट में बुद्धि का उजाला बढ़ता जा रहा था। विचारों की एक अन्तहीन शृंखला चल निकली थी और आत्माशिशु अपनी समझ के अनुसार इन दिव्य खिलौनों से खेल रहा था। आरुणी शिशु फिर प्रकृति मां की की गोद में था।

× × ×

इस नए विचार ने आरुणी की आत्मा को नए प्रकाश में जगा दिया। अपने जीवन की सभी घटनाओं को वह एक दूसरी ही नजर से देखने लगा। अब न प्रतिशोध था, न घृणा, न पश्चात्ताप। ये विपरीत जो जीवन में मिल रहे थे इनका अस्तित्व ही नहीं था। ये असत् थे। ये इसलिए जीवन मे आए थे कि इनके असत् को उसकी आत्मा जाने। ये ज्ञान का एक और क्षितिज आत्मा पर जगाने के लिए आए थे। जिस आत्मा का विश्वास ईश्वर में अक्षुण्य है वह असत् से विचलित नहीं होती। उसकी रचना के पीछे ईश्वर के उद्देश्य को पहचानती है।

मगर इस जागृति के बाद भी उसकी आत्मा मौन थी। मानो अड़ गई थी। प्रेम के इस पथ पर चलने की तीव्र इच्छा होते हुए भी वह चल नहीं पा रहा था।

उसकी आत्मा आगे बढने से इनकार कर रही थी। उसकी यह जागृति व्यर्थ थी। जब तक आत्मा में प्रेम की आग नही लगती यह ज्ञान बेकार था। वह तरह-तरह से चेष्टा करता। कभी दीन-दु:खियो के प्रति, कभी पशुओं के प्रति, कभी मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम से अपनी आत्मा को भर लेता और उस स्थिति को स्थायी बनाने की चेष्टा करता। मगर उसकी आत्मा विद्रोह करती। यह बनावटी प्रेम उसे क्रोध और ग्लानि से भर देता। एक ही बात स्पष्ट थी। उसकी आत्मा किसी चोट खाए नाग की तरह अपने बिल मे लौटजाना चाहती थी। वह नीचे उतर रही थी अचेतन के अन्धेरो मे। वहीं वह आराम से सो जाने की तैयारी मे थी। इस पलायन करती आत्मा को रोकना उसके बस मे नहीं था। उसकी कोई भी शक्ति इसे रोक नही पा रही थी।

एक शिथिलता उसके मष्तिक और हृदय मे छा गई थी। बिल के नीद भरे अंधेरे जैसे उसे खीच रहे थे। उसका मन सब बातों से फिर गया था। रोहिणी से भी। उसे केवल अपना व्यवसाय और आराम से भरा अपना घर याद रह गया था। उसे किसी और चीज मे रुचि थी। मगर तो वह थे नाटक। यह शौक बचपन से था। संध्याओं को वह अक्सर रंगमंच के अभिनय देखने चला जाता। वह जानता था उसकी आत्मा भाग रही है। मगर वह नहीं चाहता कि उसकी आत्मा यह जहरीली नीद सो जाए? वह रम्भा की तलाश मे निकला। रम्भा उसकी उलझन को सुलझा सकती है।

गंगोत्री के निकट रम्भा का आश्रम था। वहां पहुंचने में उसे दो माह लग गए। संध्या के समय वह वहां पहुंचा। रम्भा ने कहलवाया कि वह प्रात: वेला ही मे मिल सकती है। यही आश्रम का नियम है। उसने वहां रुकने की आज्ञा चाही और वह भी उसे नही मिली क्योकि आश्रम में केवल महिलायें ठहर सकती थी। वह ठण्डी रात उसने एक निर्जन गुफा में बैठ कर गुजारी। उसे न चाहते हुए भी याद आते रहे रम्भा के साथ बीते परिणय के वे दिन। रम्भा का केशरिया वर्ण और सावन की दोपहर निर्जन प्रकोष्ठ मे दो उन्मुक्त, विह्वल प्रेमी और रोमीय दीप का सुनेहरा प्रकाश। यह स्मृति उसके हृदय मे किसी सोई पीड़ा को जगा रही थी। उसके पौरुष को ललकार रही थी। उसे लगा रम्भा ने पुरुषों से इतनी दूरी क्यों बनाई? इसके रहते क्या वह सचमुच मोक्ष पा लेगी? क्या यह पुरुषों के प्रति छिपा बैर नही था? यह विद्वेष क्या उसके पांव नही रोक रहा होगा?

तब उसके मन में आया अगर यह विद्वेष आत्मा का विकास रोक सकता है तो क्या वह विद्वेष नहीं रोक रहा होगा जो उसके हृदय में बरसों से अपने माता-पिता और मन्जरी के प्रति पलता रहा है? उसे उत्तर मिल गया था। उसकी आत्मा को जो बिल पीछे खींच रहा था, प्रमाद और नींद की ओर, वह यही घृणा थी। यह योनि की पुकार थी। उसने अपने माता-पिता और मन्जरी को कभी क्षमा नहीं किया।

ऊषा काल में ही आरुणी आश्रम की ओर चल पड़ा। रम्भा प्रतीक्षा कर रही थी। "मैं जानती थी तुम भोर की प्रतीक्षा नहीं कर सकते। प्रश्न का उत्तर तुम्हें तुरन्त ही चाहिए।" आरुणी को आश्चर्य हुआ। रम्भा इतनी प्रसिद्ध और सर्वमान्य ऋषि होकर भी गम्भीर नहीं लग रही थी। वह तो पहले से भी सरल और आत्मीय लग रही थी।

"क्या मैं जान सकता हूं देवि कि मुझसे आप संध्या को क्यों नहीं मिलीं? मुझे आश्रम में भी क्यों नहीं ठहराया गया?"

रम्भा हंसी, वही खनकती मधुर हंसी। उसे लगा रम्भा की आकृति किशोरियों जैसी हो गई थी। उसके कंधे पतले हो गए थे और पयोधर उन्नत। उसके नेत्रों की चमक अनुभवहीन, निश्छल, सरल कौमार्य जैसी थी। इस भव्य परिवर्तन को वह अवाक् देखता रह गया।

रम्भा के नेत्रों में प्रेम छलक रहा था। लेकिन कैसा प्रेम था वह? जैसे वह उसकी छोटी बहन थी। क्या यह संभव है कि एक नारी के शरीर पर से भी भोग की कालिमा उतर जाए? उसके मन में प्रश्न उठा।

"हां यह संभव है आरुणी। तुम्हारे मन ने जो प्रश्न किया वह मैंने सुन लिया। उसका उत्तर देकर तुम खुद ही भूल गए। याद करो तुमने एक बार कहा था काल की गति केवल आगे को नहीं पीछे को भी है। जो मागना जानते हैं उन्हें काल यौवन ही नहीं कौमार्य भी लौटा देता है।"

आरुणी ने नत मस्तक हो प्रणाम किया।

रम्भा खिलखिलाई। एक निश्छल बालिका जैसी हंसी थी वह "देखो मैं जानकर तुमसे शाम नहीं मिली। तुम्हारे सवाल का जवाब देना था। तुम्हें गुफा में नहीं मिला?"

आरुणी के वक्ष में एक भय-मिश्रित रोमांच हुआ। वह बालिका स्वयं भव्य

उस ... रही थी जो कण-कण में व्याप्त है, वायु से भी सूक्ष्म है, जो हर

"मैं तुम्हारे पास ही तो रही रात-भर आरुणी। तुम्हारी आत्मा की व्यथा पर सच मैं बहुत रोई। पर मैं क्या करूं ? ये अंधेरे तो सबको अपने लिए पार करने पड़ते हैं। कोई किसी के लिए नहीं चल सकता।"

"मुझे बताओ मैं क्या करूं ? मुझे राह सुझाओ देवी।" आरुणी की वाणी अनुनय विनय से भरी थी।

"तुम अपने दुःखों विकृतियों का कारण अपने पिता को माता और मंजरी को मानना छोड़ दो। पगले वे न होते तो भी ये दुःख तुम्हारे जीवन मे आते ही। ये जातीय पाप हैं। कुछ और घटनायें बनकर तुम्हारे जीवन मे इनको प्रकट होना था।"

"ये जातीय पाप क्या हैं ?"

"जिस मनुष्य जाति मे हम तुम जन्मे हैं वह हजारों वर्षों से जीवन के अर्थ, उद्देश्य और मूल्य ढूंढ़ने मे लगी है। न जाने कितनी बार भरपूर आस्था से हमारे पूर्वजों ने किसी झूठ को सच माना, किसी पाप को पुण्य समझा। उस उलटे विश्वास मे न जाने कितनी पीढ़ियां निकल गईं। फिर भूल समझ में आई तो बाद के युग मे उस बात को झूठ और उस कर्म को पाप जानकर लोगो ने तज दिया। मगर मत भूलो कि सैकडो वर्षों तक हमारे पूर्वजों की आत्मा उनमें पूरी आस्था रखती रही है। वे सत् रहे हैं। अब छोड़ देने से उनकी शक्ति बढ़नी रुक जाएगी मगर जो आत्मिक शक्ति उन्हे अतीत में मिल चुकी है वह हर मनुष्य की आत्मा मे जातीय पाप या जातीय अज्ञान बनकर जगेगी। तुम्हारा हित चाहते हुए भी तुम्हारे पिता तुम्हें खेलने से क्यों रोकते थे ? सच्चरित्र होते हुए भी मंजरी ने तुम्हें क्यो वासना का खेल सिखाया ? फिर क्यो इससे घृणा करने लगी ? क्यों तुम में अपने ही ऋषिकुल की भगिनी तुल्य कन्या के प्रति वासना जगी ? क्यों तुम्हारी साध्वी माता ने उस घटना पर इतने शब्द कहे जो कहने नहीं थे ? ये सब उसी जातीय संचित अज्ञान और पाप की अभिव्यक्ति है। इसमें व्यक्ति का दोष नहीं।"

"इनका निदान तो होगा ?"

"क्यों नहीं। ये आत्मा की ही शक्तियां हैं जो विकृत हो गई। जैसे महेश्वर

शिव अपनी शक्ति को अपने में लीन कर लेते हैं उसी तरह हमारी आत्मा इन जातीय शक्तियों को जाति की समूह चेतना में लीन करा सकती है।"

"वह कैसे ?"

"हर विकृति चतुर्मुखी है। इस तल की चारों विकृत शक्तियों को ढूंढ़ो और जानो कि वे चारों एक-दूसरे को नष्ट कर देती हैं। जब ऐसा कर लोगे तो सत् रह जाएगा। फिर तुम्हें कभी भी वे जातीय पाप तंग नहीं करेंगे।"

"आश्चर्य है देवि।" आरुणी बोला, "विकृत शक्तियां चतुर्मुखी हैं और स्वयं एक-दूसरे को नष्ट कर देती हैं यह रहस्य मेरी आत्मा ने भी एक दिन स्वतः उद्घाटित किया था।"

"अनेक जनों को वही सत्य अनेक राहों से प्राप्त होता है आर्य।"

रम्भा के मुख से हंसी चली गई थी और गम्भीरता इस तरह घिर आई थी जैसे पिछली शाम उसने पर्वत शिखरों पर पड़ी अरुणाई को दिन छिपते-छिपते एकदम राख के रंग में बदलते देखा था।

वह रम्भा से और बातें करना चाहता था मगर दो दिन प्रतीक्षा करने पर भी उसे दुबारा रम्भा के दर्शन नहीं हुए। परन्तु उस सारे वातावरण मे उसे एक किशोरी की हंसी, चंचल दौड़ और पवित्रता घुली मिल रही थी। क्या सचमुच संभव है एक नारी के लिए अकेली इतना प्राप्त कर लेना ? बिना गुरु के रम्भा आज उस शिखर पर पहुंच चुकी थी जिस पर आज तक उसने किसी भी व्यक्ति को नहीं देखा था।

× × ×

बीस वर्षों के बाद आरुणी ऋषिकुल लौटा। भोर हो रही थी। उसके बड़े भैय्या बैलों को लेकर उसके पास से निकल गए। वे उसे भूल गए थे। पर वह नहीं भूला था। वह घर में नहीं गया और बाहर जामुन के पेड़ पर चढ़ गया जहां से वह बचपन में घर के अंदर का दृश्य देखा करता था। पिता जी उसके बाहर होने पर नाराज तो नहीं है। उसने देखा उसकी भाभी आंगन में लगी तुलसी को जल

दे रही है। एक वृद्धा दूध निकाल रही थी। आरुणी की आंखों से आंसू टप-टप गिरने लगे। मां बूढ़ी हो गई। उन आंसुओं में उसे बहुत सुख मिला। अच्छा हुआ ये बरस गए। मैंने बहुत अन्याय किया था मां के साथ।

वह घर के भीतर गया।

"स्वागत आर्य।" उसकी भाभी ने अगवानी की। वह उसे नहीं पहचान पाई थी।

"कल्याण हो देवि! मैं आचार्य क्षीर वृद्ध से मिलना चाहता हूं। औषधि-विज्ञान के विषय में मुझे उनसे एक जरूरी काम है।"

"आचार्य तो मथुरा गए है, एक मास हो गया।"

"मुझे एक संवाद देना था उनके पुत्र आरुणी का।" उसने देखा दूध दूहती मां के हाथ रुक गए थे। एक घड़ी उसके बोलने की प्रतीक्षा में रुके रहे और उसे मौन देख फिर दूहने लगी।

इतनी देर मे न-जाने क्या प्रतिक्रिया आरुणी के मन में हुई। क्या मैं फिर घर की सुरक्षा ढूंढने आया हूं? ऋषिकुल मैं तज चुका हूं। ऋषि-पुत्र लौटकर घर नहीं आते। इससे ऋषिमाता की कोख जलती है। घर छोड़ने के बाद ऋषि-पुत्र के लिए केवल एक ही मार्ग रह जाता है तप, साधना, संन्यास।

"गंगोत्री मे मुझे आरुणी मिले और उन्होंने यह संवाद कहलाया है कि पिता श्री के आशीर्वाद से उन्हे शल्य चिकित्सा में सफलता मिल गई।"

मा ने एक बार मुड़कर उसे देखा। मां की आखो मे आसू देख उसका हृदय उमड़ा। उसका मन हुआ वह दौड़कर उसका आलिंगन कर ले। मगर वह जाने को मुडा।

"ठहरो पुत्र।" मां बोली। एक पात्र मे दूध लाकर उसने उसे दिया। एक तश्तरी में आटे के दो लड्डू थे जो मां के ही बनाए हुए थे। जल्दी-जल्दी दूध आरुणी ने पी लिया और मुंह पोछने से पहले जल्दी से आंखें पोंछी और दोनों लड्डू हाथों में उठा तेजी से मुड़ा। वह बोल नहीं सकता था, रुक नही सकता था। आवाज मे भी आंसू भर गए थे और आंखो मे भी।

"तुम्हारी यात्रा शुभ हो भद्र।" ये मां के शब्द थे। आरुणी के पग तेज हो गए। वह जल्दी से ऋषिकुल के बाहर हो जाना चाहता था। एक उड़ती तेजी में उसने तालाब देखा जिसमे कमल खिले थे, किरणो के खरगोशों के झुंड थे। ऋषि-

कुल वैसा ही था। बस कुछ और कुटियां बढ़ गई थी। एक दर्द उसके यकृत से उठा और नाग की तरह उसकी आत्मा को लपेटने लगा। ये बचपन की याद है जो बेड़ियें पहना रही थी। "नहीं लौट जाओ बचपन" वन के एकान्त में रुककर वह बोला, "मां के पास लौट जाओ। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं छोटे आरुणी लौट जाओ। हे काल देव! मुझे अतीत से मुक्त करो। हम ऋषि-पुत्रों के लिए न अतीत है, न भविष्य।"

और एक शांति छा गई। आरुणी को लगा यह एक स्वप्न था, बहुत मीठा स्वप्न जो बीत गया था। यह आकर्षण कितना तीव्र है। अभी उसे मंजरी से मिलना था। मंजरी कहां होगी? वह नदी किनारे नाविक के घर गया। उससे मंजरी का पता ले वह मंजरी के गांव गया। मंजरी का विवाह एक गृहस्थ किसान से हुआ था।

मंजरी को उसने पहचान लिया। "मंजरी" वह बोला।

मंजरी कुछ देर उसके चेहरे में घूरती रही। "अरे आरुणी तुम!" एक खुशी की चीख उसके मुंह से निकली "आओ! आओ!" वह उसे भीतर ले गई। उसे आश्चर्य हुआ उस पाप की जरा-सी भी स्मृति मजरी के दिल में नहीं थी।

मंजरी ने उसका परिचय अपनी सास से कराया और अपने बच्चों से। वह बहुत-सी बातें उससे करती रही। या तो बचपन का वह पाप उसकी आत्मा ने धो दिया था या फिर उसके नारीत्व पर वे छींटे ही नहीं पड़े थे। उसके चलते हुए मंजरी की आंखों में आंसू थे।

गंगा की धारें मटमैली थीं। लौटते हुए उन्हें देखते देखते आरुणी की आंखें हठात् भर आईं। उसने गंगा को प्रणाम किया और उस मटमैले पानी में उसे मंजरी का चेहरा दिखाई पड़ा। उसे लगा मंजरी ही गंगा थी। सारे पाप उसने धो दिए थे। जिंदगी की रह गुजर में जितना मैल उसके शरीर पर पड़ा था उसे उसकी आत्मा ने धो दिया था और वही मैल उसके अपने मन मे रुका रहा। नारी की गहनता और नैसर्गिक पवित्रता का एक और अनुभव आज उसे हुआ था।

× × ×

घटना-चक्र विचित्र है। आरुणी को लौटे तीन दिन हुए थे कि रोहिणी के पिता फिर आए। फिर संध्या थी और उनके घोड़े पर रोहिणी अचेत पड़ी थी। इस बार उसके पेट में कटार लगी थी। कटार तो पिता ने निकाल ली थी और उसके पेट को कसकर कपड़े से बांध रखा था। इस बार दो व्यक्ति और साथ थे।

फिर पूरी रात लगी उसे होश में लाने में। आंतें बाहर निकल आई थीं। आज रम्भा नहीं थी जो ऐसे मौकों पर बहुत काम आती थी। उसकी जगह दो परिचारिकायें थीं। *उसे अपहरणकर्ता ने कटार मार दी थी क्योंकि उसने उसका वरण नहीं किया था।* पांच महीने वह उसकी कैद में रही थी। आरुणी को आश्चर्य हुआ *रोहिणी ने ऐसा क्यों किया ?*

उसे होश में आया देख आरुणी ने हंसी की, "सुंदरियों की जान को बहुत खतरे होते हैं।"

"कैसे खतरे ? वह तो मेरा वार जरा फिसल गया। वरना मेरी जगह वह होता यहां।"

"तुम्हारी जगह तो नहीं, हां इस जगह तो हो सकता था जहां तुम लेटी हो।"

वह उससे आंखें नहीं मिला रही थी और इस बात को भी काट गई। "अरे अगली बार देख लेना।"

"मगर कटारों तक बात क्यों पहुंच गई ?" आरुणी ने पूछा।

रोहिणी शर्माई नहीं मगर हलकी-सी गुलाबी सिहरन उसके चेहरे पर आई, "मेरे पिता से पूछना।" वह शांत स्वर में बोली।

उसके पिता ने बताया कि वह लड़का रोहिणी के हृदय में जब प्यार न जगा सका तो उसने अभद्रता करनी चाही और उसी पर रोहिणी ने कटार मार दी जो उसकी बांह में लगी। उसने तब क्रोध में रोहिणी को जख्मी कर दिया।

आरुणी की समझ में नहीं आया था कि क्यों फिर वह उसके घर पांच महीने रही।

सरदार बोला, "तुम्हारी रीति दूसरी है। ये हमारे रिवाज हैं। जो व्यक्ति हमारे यहां किसी कन्या का अपहरण कर लेता है उसके घर किसी निर्णय तक कन्या को रहना पड़ता है।"

"तुम्हें उसकी रक्षा करनी चाहिए।" आरुणी ने कहा।

"हमारे यहां खुद लड़कियों को अपनी रक्षा करनी होती है। हमारे यहां जीवन बहुत कठिन है। जीने के रास्ते इतने आसान नहीं हैं।"

आरुणी ने उस हंसते निश्चित चेहरे को देखा जो एक सुंदर पशु से अधिक कुछ नहीं था। उसे ख्याल आया कभी उसे कितना असहाय प्रेम था इस लड़की से। मगर भरोसा नही था इस निष्प्रेम पर। न जाने कहां विचारों, अनुभवों, स्मृतियों की तहों मे कोई शोला था जो आज भी इसी के लिए जल रहा था। यह आत्मा विहीन सुंदरी क्यों मुसकरा रही थी? पिता के जाने के बाद आरुणी ने उससे पूछा, "अगर तुम्हे मुझ से प्रेम नही था तो तुमने मुझ से झूठ क्यों कहा था?"

वह मुंह छुपाकर हंसने लगी।

एक विवश क्रोध उसके शरीर मे विजली की तरह तड़पा। वह कुछ नही कर सकता था। वह कुछ नही कह सकता था। आरुणी को अपने भाग्य पर हंसी आई। उसे प्रेम भी हुआ तो एक अनार्य बाला से जिसके आदर्श वो थे जो आर्य परिभाषा में आदर्शहीनता है। उसके मापदंड पर आरुणी एक घटिया पुरुष था। क्या उद्देश्य था नियति का? उसके अंग-अंग में एक आग जैसे धीमे-धीमे सुलग रही थी।

आरुणी की आत्मा टूट चुकी थी।

गंगोत्री और ऋषिकुल की यात्राओं से भी वह विध्वंस दूर न हो सका था जो रोहिणी के विचित्र व्यवहार से उसके हृदय मे किया था। न तो वह रोहिणी के लिए पहले की तरह व्यग्र था, न उसके निकट रहने की उसकी इच्छा थी। मगर उससे दूर भी रहने को वह तैयार नही था। रोहिणी ने सर्वनाश कर दिया था। उसने सिर्फ उसके प्रेम को ही नहीं ठुकराया था। उसने उसकी आत्मा को लंगड़ा और अंधा कर दिया था। न तो वह आगे बढ़ सकती थी न कुछ देख सकती थी। वह ठिठक गई थी।

उसकी आत्मा में प्रेम एक ईश्वरीय देन रही थी। मगर इस प्रेम ने वह देन उससे छीन ली थी। उसका प्रेम नील गगन में उड़ते पक्षी की तरह मुक्त था, चन्द्रमा की तरह उजालों से भरा रहता था और हरदम पंखों पर उठने को आतुर एक युवा पक्षी की तरह था। और अब वही प्रेम अंधेरों और उलझनों से भर गया था। वह किसी पिंजरे में कैद था जिसकी चाबी रोहिणी के पास थी।

था। उसकी सारी साधना खण्डित हो गई थी। इस प्रेम ने उसे जीते जी ऐसे नर्क मे ला दिया था जहां से वह भी नहीं जाना चाहता था।

× × ×

एक दिन पिता पुत्री में भयंकर युद्ध हो गया। पिता जब आए तो रोहिणी खिन्न थी। पिता को उसकी चढ़ी मूरत देखते ही क्रोध आ गया। "तेरा दिमाग तो ठीक है ? हमेशा मुंह चढ़ा रहता है।"

एक आग्नेय दृष्टि से पुत्री ने पिता को देखा। पिता के तन बदन में आग लग गई। "अगली बार कोई ऐसी बात हुई तो मैं तुझे छुरी से काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। और भी तो बच्चे हैं···"

पुत्री फुंकार उठी, "लो काटो, लो।" वह उछलकर पिता के सामने गई। "काटो मुझे, काटो, अब क्यों रुक गए ?"

पिता ने एक झटके से पुत्री को पलंग पर गिरा दिया और उसके जख्म से खून जाने लगा। तब आरुणी को सरदार बुला लाया और उसे घटना का पता चला। एक घृणा दोनों के प्रति उसके हृदय मे उठी परंतु उसे व्यक्त करना उसकी आर्य शालीनता के विरुद्ध था। वह चुपचाप उसकी पट्टी ठीक करता रहा। बात खुल जाने से उसकी शर्म भी दूर हो गई थी और पिता पुत्री फिर लड़ने लगे थे। पिता अब उसकी मां को कोस रहे थे और रोहिणी क्रोध और विवशता और इस लज्जा में कि यह सब आरुणी के सामने हो रहा था रो रही थी।

"वह सारा खानदान ही ऐसा है।" पिता उसकी मां के लिए कह रहे थे। ये कैसे बच्चे दिए उसने मुझे।"

रोते-रोते मुंह उठाकर वह बोली, "तो मार देते हमें, पाला क्यों?"

"तू बत्तमीजी करती रहेगी, चुप नहीं होती ?" पिता भभके। "ऐसा थप्पड़ मारूंगा कि सीधे जाकर पड़ेगी सड़क पर। एक टांग तो टूटी थी दूसरी भी टूट जाएगी।"

आरुणी के हृदय को असह्य आघात लगा था। वह चुप था। इस वार्तालाप

में निहित जंगलीपन पशुओं की तरह उसके हृदय को खा रहा था। इनमें न मान या न मर्यादा, "अब मैं कभी नहीं आऊंगा। यहीं पड़ी सड़ती रहना बेशर्म।"

"हां तुम्हें भी कसम है वरुण की जो तुम आओ।" उसकी आवाज में निर्णय और जिद थे "तुम भी मेरा मांस खाओ अगर मिलने आओ। मुझे घर जाना ही नहीं है। मैं सड़क पर भीख मांग लूगी।"

सरदार घोड़े पर चढ़कर उसी आवेश में चला गया। आरुणी रोती हुई रोहिणी के जख्म में दवाई लगाकर चुपचाप बाहर चला गया। उसका मन एक शब्द भी बोलने को नहीं हुआ। उसके हृदय में कटुता और घृणा थी और पीछे हटने की प्रेरणा थी। ऐसे पाशविक जीवन में घुसने से उसकी आर्य आत्मा बच रही थी। उसके पास इतनी असभ्यता के स्तर की सभ्य भाषा नहीं थी। इस स्तर की असभ्यता उसके जीवन में पहली बार आई थी।

दिन भर उसका मन खिन्न रहा। उसको प्रेम ने रोहिणी के निकट ला दिया था। उसने ठुकरा दिया तो क्या। उसकी आत्मा को तोड़ दिया तो क्या। उसके जीवन के गहन अनुभव उस पर असर न छोड़ते, ऐसा कैसे हो सकता था। पर एक बार भी उसका मन जाकर रोहिणी को सांत्वना देने का नहीं हुआ। दोनों के बीच बना पुल टूट चुका था। मगर फिर भी वे दो बस्तियों की तरह अलग-अलग जल रहे थे जिनके बीच का एकमात्र पुल टूट गया था।

कुछ दिनों बाद उसके पिता आए तो जैसे वह घटना दोनों पूरी तरह भूल चुके थे। पिता पुत्री इस तरह बातें कर रहे थे जैसे कभी वह घटना ही नहीं घटी थी। पिता हाथों से फोड़कर बादाम खिला रहा था और पुत्री हंस रही थी। उसकी सूरत देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह लड़की इतने तूफानों से गुजर चुकी थी।

पहले तो आरुणी को यह बचपना अच्छा नहीं लगा। मगर उस दिन पहली बार उसकी आर्य सभ्यता में एक दरार आई। उसे पहली बार आर्य आदर्शों पर संदेह हुआ। क्या ये बनावटी जीवन नहीं दे रहे थे? उसे एक बात और महसूस हुई। उसके अपने स्वप्न को साकार होने के लिए आधार नहीं मिल सका था। क्या इसका कारण वे आर्य आदर्श नहीं थे जो जीवन से दूर कर रहे थे। इसी तरह की असभ्य स्थिति उसके जीवन में नहीं आई थी जब उसे पिता पर, माता पर, मंजरी पर क्रोध आया था? बस एक अंतर था कि वे बातें उसने कहीं नहीं

थी। उसके मन में ही वह क्रोध व्यक्त हुआ था। मगर क्या इसे बाहर प्रकट होने से रोकना बस यही थी आर्य सभ्यता ? परंतु यह कर्म बंध से मुक्ति तो नहीं थी ? मन में पिता के प्रति क्रोध आ जाने मात्र से कर्म बंध तो हो गया। अगर वह भी उस क्रोध को अपने पिता के आगे प्रकट कर देता तो उसके पिता पर उसका सत्य प्रकट हो जाता। उनका परिपक्व मस्तिष्क सोचता कि ऐसा क्यों हुआ और वे खेलने के प्रति अपने विरोध पर पुनर्विचार करते। दोनों की समझ बढ़ती और जीवन शायद कुछ और होता। दो पीढ़ियों की बुद्धि मिल कर एक नया स्वर्ग रचती। मगर यहां तो दो पीढ़ियों के बीच वार्तालाप ही खत्म हो गया। वह घर छोड़कर चला गया। अगर उनके जैसा ज्ञान और साधना रोहिणी और सरदार के पास होते तो उनकी यह उन्मुक्त निकटता ज्ञान के किन शिखरों पर से उन्हें ले जाती।

ये विचार उसे सोचते-सोचते बहुत दूर ले आए। आज तक जो बातें निर्विवाद थीं उन पर संदेह हो गया था। आज पहली बार उन अत्याचारों की एक अनुभूति उसे हुई जो आर्य पूर्वजों ने भारत की अनार्य जातियों पर किए थे। अत्याचार दोनों पक्षों का शिकार करता है। अत्याचार करने वाले का भी और जिस पर अत्याचार होता है उसका भी। अनार्यों को भारतीय सभ्यता की सीमाओं से दूर घने वनों और पर्वतों में खदेड़ दिया और ज्ञान से दूर कर दिया। न वे ऋषिकुल में आ सकते हैं न शास्त्र पढ़ सकते हैं। इस तरह उनका जीवन अबौद्धिक तो हुआ मगर भावनाओं की दृष्टि से बहुत परिपक्व हो गया। इधर आर्यों का जीवन बौद्धिक रूप से जितना विकसित हुआ भावनात्मक रूप से उतना ही खाली होता गया।

जीवन के दो टुकड़े होते जा रहे हैं, बुद्धि और भावना। एक आर्यों ने अपना लिया और दूसरा अनार्यों ने और दोनों एक दूसरे से दूर-दूर जा रहे हैं। याज्ञवल्क, कश्यप, वशिष्ठ, गौतम आदि ऋषियों की परंपरा लुप्त होती जा रही है जिन्होंने नारी को मोक्ष-साधन में सहयोगी माना था। विरोधी नहीं। राम और कृष्ण की परंपरा भी मिट रही है जिन्होंने नारी के प्रति अपने प्रेम को मुक्ति का मार्ग बनाया था। उनकी जगह देश में एक नई ऋषि परंपरा चल निकली थी जो नारी के प्रति विमुख थी। वह नारी के प्रति प्रेम को मोह समझती है और उसके त्याग को मोक्ष की दिशा में अनिवार्य पग कहती है।

मगर यह अनुचित है। परंपरा कहती है कि ऐसा सृष्टि के शुरू में भी हुआ जब भगवान ब्रह्मा जी ने सनत, सनत्कुमार, सनक और सनातन चार उर्ध्व रेता मुनि पैदा किए और उन्हें आज्ञा दी कि वे सृष्टि क्रम को आगे बढ़ावें। वे उनकी अवज्ञा करके वन को चले गए थे। उन्हें नारी में, सृष्टि में कोई रुचि नहीं थी। यह काम क्या आज के ऋषि नहीं कर रहे हैं? उसने अपनी माता के बारे में सोचा उनका कोई भी संबंध पिता के आध्यात्मिक जीवन से नहीं था। परंतु शास्त्रोय आदर्श तो ये नहीं थे। ब्रह्मा की आज्ञा तो कुछ और थी।

एक नया संकल्प उस क्षण आरुणी के मन में जन्मा और समय के साथ दृढ़ होता गया। मैंने एक बार प्रार्थना की थी कि मैं एक नए वंश के बीज डालूं। मैंने अपने पिता के वंश से संबंध तोड़े थे क्योंकि सभी वंशों में संकीर्णता और अज्ञान का विष मिल गया है। जिसका परिष्कार कोई नहीं करता। वंशों के ये विषवृक्ष मनुष्यों का शोषण कर रहे हैं। आज मैं एक और संकल्प करता हूं। मैं सभी ऋषिकुलों से संबंध तोड़ता हूं। ज्ञान की जो भी संपत्ति मुझे उत्तराधिकार में मिली है उसका त्याग करता हूं। मैं एक नए ऋषिकुल की स्थापना कर सकूं प्रभु यही वरदान चाहता हूं। जहां भावनाओं और बुद्धि में संघर्ष नहीं होगा। वहां नारी-पुरुष ज्ञान मार्ग पर भी एक दूसरे के विकास में सहयोगी होंगे। मेरा सारा ज्ञान प्रेम से ही उत्पन्न हुआ। प्रेम के बिना जो भी ज्ञान है वह अज्ञान है। ऐसे ही ज्ञान की परंपरा इस ऋषिकुल में पड़ेगी। अनार्यों के प्रति विद्वेष और बैर समाप्त होंगे। मेरा ऋषिकुल आर्य और अनार्य दोनों परंपराओं का संगम होगा।

समानता के दर्शन उसे एक अनार्य पिता और पुत्री के बीच हुए थे। यही कारण था कि अनार्य बिन गृहत्याग किए भी अध्यात्म पथ पर बढ़ रहे थे। कुछ अनार्य ऋषियों के नाम आर्य दुनिया में भी आदर के साथ लिए जाते थे। उनके सामाजिक जीवन की समानता ही वह शक्ति थी जो उनके सामाजिक संबंधों को बेड़ियां नहीं बनने देती थी। वहां वृद्धों को इजाजत थी खुलकर अपनी भावनाएं व्यक्त करने की। वहां पर वृद्धों को हरदम युवकों के आगे एक आदर्श होने का और परिपक्व तथा गंभीर होने का ढोंग नहीं करना पड़ता था। वहां वृद्ध भी मनुष्य था और युवा भी। दोनों एक दूसरे को समानता की नजर से देखते थे। दोनों की प्रतिक्रियाएं एक दूसरे के सामने खुलकर होती थीं। वृद्धों के बाहरी और भीतरी दोनों व्यक्तित्व एक थे। अतः युवकों को उनके प्रति रोष नहीं था।

उनका जीवन सत्य को बर्दाश्त कर रहा था। अनार्य जीवन कटु सत्य का विष पीकर सशक्त हो रहा था। परंतु आर्य वृद्ध एक आदर्श प्रस्तुत करने की चेष्टा में जीवन से दूर हो गए थे। और उनके साथ युवावर्ग भी सत्य से दूर होता जा रहा था। इसके परिणाम भयानक होंगे। आदर्श जीवन को यथार्थ जीवन से जन्म लेना है। यदि यथार्थ से वह दूर हो गया तो यथार्थ जीवन के विरुद्ध अपनी सत्ता बना लेगा।

आरुणी अपने नए विचारों को प्रकट करने लगा। अनार्यों के प्रति उसकी सहानुभूति ने राजदरबार को और जनता के अधिकांश लोगों को उसके विरुद्ध कर दिया। महाराज ने उसे धनवन्तरि की उपाधि दी थी वह वापिस ले ली गई। उसे निर्देश दिए गए कि यदि वह अपना आर्य सभ्यता विरोधी अभियान नहीं रोकेगा तो उसे पारचिनार से बहिष्कृत कर दिया जाएगा। उसे अनार्य कहा जाने लगा। एक उक्ति प्रसिद्ध हो गई कि यदि आरुणी का औषधालय हो और सामने से मरखना बैल आ रहा हो तो औषधालय में मत घुसो उस बैल के आगे चले जाओ। आरुणी अपनी समस्याओं में इतना उलझ गया कि उसे रोहिणी से दो घड़ी बात करने का भी होश नहीं रहा। घर के सेवक एक-एक कर छोड कर जा रहे थे। रोहिणी का जख्म आधे से अधिक ठीक हो चुका था। वह अकेली पड़ी-पड़ी ऊबने लगी थी। एक दिन उसने आरुणी से कहा कि वह अगली सुबह घर जाना चाहती है।

यह खबर सुन आरुणी को एक तेज झटका लगा। वह यह समझ बैठा था कि उसे रोहिणी से प्रेम नहीं रहा। मगर उसके जाने की बात ने उसे अकेलेपन से भर दिया। वृक्षों से भरी उसकी वाटिका में साए-ही-साए घिर आए। उसकी इच्छा हुई वह रोए अपने जीवन की दुर्दशा पर जो एक लुढ़कते पत्थर की तरह कुछ नहीं पा सका था। कोई कमी थी उसकी आत्मा में जो कोई भी उसका नहीं हो पाया। शायद उसकी आत्मा उस आर्य श्राप से ग्रस्त थी। जो एकांत चाहती थी। बड़ी निर्ममता और क्रुरता के साथ एकांत चाहती थी। इसलिए जो भी जीवन मे आता था उससे किसी-न-किसी बहाने वह दूर हो जाता था। प्रेम में आस्था रखते हुए भी उसकी आत्मा प्रेम को तोड़ने की एक गुप्त चेष्टा करती रही थी। उसने रोहिणी से "अच्छा" कह दिया क्योंकि वह कुछ और नहीं कह सकता था। उसके हृदय मे रोहिणी के लिए जो मीठा दर्द कभी उठा था वह कब का

मिट चुका था। वही माधुर्य प्रेम है। वह नहीं रहा तो कोई भी और नाता उसके और रोहिणी के बीच नहीं था जो उसे रोक पाता। मगर यहां वह भूल पर था। प्रेम केवल माधुर्य नहीं है। प्रेम कठोरता भी है, मौन भी है, कभी-कभी शून्य भी है।

× × ×

उस रात हृदय-मंथन का एक और दौर चल निकला। कितनी ही तरह कोशिश करके भी उसे नींद नहीं आई। आधा चांद था और एक खाली हृदय में अनर्गल था जो उठ-उठकर कान की नसों को तोड़े दे रहा था। शून्यता थी जिसके पार निकलने को मार्ग नहीं मिल रहा था। आरुणी की कनपटियों और नाभि में प्रश्न चिह्न अड़े हुए थे और प्रकाशहीन हृदय उनका उत्तर देने में असमर्थ था। रात ढलती गई और गहन मौन के बीच उसका हृदय संघर्ष करता रहा। खिड़की के पास वह चुप बैठा रहा।

आरुणी का हृदय जल चुका था। उसे दुःख रोहिणी के इस अमानवीय कृत्य पर नहीं था जितना इस बात पर कि प्रेम करने की उसकी सामर्थ्य चली गई थी। रोहिणी ने उसे छला ही नहीं था, उसे इस योग्य भी नहीं छोड़ा था कि वह प्रेम कर सके। दिन-रात उसे यही एक चिंता थी कि कैसे वह हृदय को इस योग्य करे कि वह फिर प्यार कर सके।

हृदय के फूल जल चुके थे। एक धुआं वहां से उठता था जहां कभी प्रेम का स्रोत था। एक जहरीली नींद इसके साथ उसके मस्तिष्क में भर जाती थी। हृदय जलकर अपने धुए से मस्तिष्क को भी सुला रहा था। आरुणी की आत्मा बिलखती थी कि यह जीवन व्यर्थ निकल रहा है। आत्मा के विकास में हृदय और मस्तिष्क का सहयोग जरूरी है।

हृदय जल गया था, मस्तिष्क को गहरी नींद आई थी, सांसें उलझ गई थीं। आंखें विवश रह गई थीं। अकेली घूरने को जिन्हें शून्य के सिवाय कुछ नहीं दीखता था। इंद्रियों का रथ खाली था। उसमें बैठने वाली आत्मा मर चुकी थी और

सारथी गहरी नींद सो रहा था।

इस लंबी तपस्या से गुजरकर भी उसकी आत्मा प्रेम समाधि नहीं पा रही थी। उसके हृदय मे रूप की प्रीति कब लग गई थी? रोहिणी का वह रूप जो कभी उसमें प्रेम के दीप बनकर जलता था अब उसे याद कर उसका हृदय मिचलाने लगता था। यह आत्मा की घृणा थी सौदर्य के प्रति, सौंदर्य जिसने प्रेम के साथ पत्थरों का व्यापार किया था। जिन चार रूपों मे उसकी प्रेम समाधि टूटी उनसे पुनर्जन्म लेकर ही फिर वह प्रेम समाधि लग सकती थी। यह वह जानता था। इसी उपक्रम में वह लगा रहा था। बुद्धिबल से उसे इस चक्रव्यूह मे पार निकलना था।

मगर यह नया रोग कैसा था उसकी आत्मा में? उसे रूप से मचली क्यों आने लगती थी? आत्मा का प्रकाश इस समस्या पर पडा और मंथन शुरू हो गया।

यह रूप क्या है? आत्मा से ही बहते तीन निर्झर हैं ये सत्यं शिवं सुंदरम्। एक बार उसकी आत्मा अपने ही निर्झर से मोहित हुई। उसे सुदरता से प्यार हुआ। वह यह न समझ सका कि सुंदरता उसी की परछाई है। उसे पाने के लिए उसकी प्रेमात्मा मचल उठी थी। और फिर उसी सुंदरता से उसे ग्लानि होने लगी। इस तरह वह आत्मिक उंचाईयो पर द्वैत रच रहा था। उसकी आत्मा स्वयं ही अपने लिए जाल बुन रही थी।

सुंदरता का मुझमे अलग अस्तित्व नहीं है। यह मेरी आत्मा का ही प्रकाश है। उससे यह जो घृणा जगी है, यह नास्तिकता है, यह ईश विरोधी है। यह मृत्यु-चाह है आत्मा की। आत्मा स्वयं अपने से घृणा कर रही है। मैं रोहिणी के रूप से घृणा नहीं कर रहा हूं। मेरी आत्मा स्वयं अपने से निकलते प्रकाश से घृणा कर रही है। मगर क्यों? वह अंधेरा चाहती है। यह सौंदर्य-जोत उसकी आंखों मे चुभ रही है।

उसने पकड़ लिया था अपने को। अपने युगों पुराने शत्रु को। फिर एक बार आग्नेय नेत्रों से एक क्रुद्ध सर्प की तरह आत्मा कैसे घूर रही थी। यह आत्मा ही अपना सबसे बड़ा शत्रु है। यह सोने के बहाने ढूंढ रहा था। यह पुराना आलसी था। सुंदरता से इसका जी मिचलने लगा था। यह अंधेरे ढूंढ़ रहा था रोहिणी को दोषी बनाकर ताकि यह सो सके।

मगर तुम्हें मैं सोने नही दूंगा अजगर। तुम्हें जागना होगा। जो जगी है, प्रमादहीन है वह आत्मा है। अन्यथा अजगर।

मुझे रोहिणी के रूप पर मचली क्यों आती हैं? क्यों मैं इतना अहंकारी हूं? माना उसने क्रूर प्रहार किया। पर क्या इससे मुझे यह अधिकार मिल जाता है कि मुझे सौंदर्य पर मचली आए? क्या यह अनार्यता नही है? क्या यह ईश विरोधी विचारधारा नही है? मेरी बुद्धि विपरीत दिशा में जग गई है। मुझे इसे लौटाना होगा। यदि इसकी यह प्रवृत्ति जम गई तो यह प्रारब्ध बन जाएगी। मुझे इसे प्रारब्ध नही बनाना है। मुझे इसे प्रभु की चरण रज बनाना है।

"देवाधिदेव महादेव" उसके कंठ से स्वर फूटा, उसके नेत्र छलछला आए। "रक्षा करना देव। एक बालक हूं मैं जिन अंधेरों को राम ने तोड़ा, जिन उलझनों से कृष्ण की आत्मा और उजली हुई, जिस अज्ञान तिमिर को अरिष्टनेमि और ऋषभदेव ने बिना शस्त्र के जीत लिया, उसे मूर्ख आरुणी कैसे जीत सकता है? इतने अंधेरे मत रचो मेरे पिता ब्रह्मा···" आंसुओं का एक और जलता आवेग उसकी आंखों में छलछलाया। "तुम्हारे पुत्र आरुणी के पैर इतने मजबूत नही हैं। वह एक मूर्ख भोगी का जीवन जीता रहा है। उन तापसियों वाले अंधेरे मुझे क्यों दे दिए प्रभु।"

एक अजीब-सी अनुभूति उसे हुई। उसे लगा दूर क्षीर सागर में सोते विष्णु की शैय्या हिली। आनन्द के आंसू उसके हृदय से उठे। "ओह। तो मेरी आवाज तुम तक पहुंच सकती है नाथ। तो मुझ अधम पर अनुग्रह रखते हो कमलनयन।" वह और नहीं बोल सकता था। चेहरे पर अनेक आड़ी तिरछी रेखाएं उभरी। *क्या कोई प्राचीन भाषा थी जिसमें एक संतप्त आत्मा अपने रचयिता से बोल रही थी?*

रात प्रगाढ थी। तारे किसी गहन तंद्रा मे डूबे हुए थे। रोहिणी न जाने कब अपनी शैय्या से उठ उसके कमरे में आ गई थी और मंत्र-मुग्ध-सी खड़ी थी। अधूरे चंद्रमा की ज्योत्सना आरुणी की जटाओ और चेहरे पर पड़ रही थी। न जाने कहा था वह? रोहिणी नहीं समझ सकती थी। पर वह दिव्य उपस्थिति जिसने उसे सोती को शैय्या से उठा दिया था अब भी थी उसी कमरे में, अब जब कुछ देखते, समाधिस्थ नेत्र खोले आरुणी देख रहा था।

एक पेंग भरती उसकी आत्मा दिल की न जाने कौन-सी गहराइयों मे चली

गई थी। वह दूर थी। इस एक अनुभव ने इसे कहां ला दिया था ! ये चुप्पी और दिव्य शांति कैसी थी ? क्या यही वह प्रेम प्रकोष्ठ था जहां सिर रखकर उसका हृदय सोने को यौवन की पहली फुहार से आज तक तरसता रहा था। रोहिणी की आंखों में अश्रुओं का प्रवाह लग गया था।

आरुणी ने उसकी ओर देख नेत्र उठाने चाहे पर अभी कोई जलन दिल में बाकी थी। दिल ने पलकों को रोक दिया। और अब क्या है ? आरुणी को आश्चर्य हुआ। क्या यह काफी नहीं है ? मैं क्षमा क्यों नहीं कर पाया ? रोहिणी वह रूप नहीं है। वह रूप तो मैं स्वयं हूं। वह मेरी आत्मा का आलोक है। रोहिणी तो एक बालिका है, एक आत्मा जो मेरी ही तरह संतप्त है। बस उसका अज्ञान दूसरी तरह का है। यह माया की करनी है कि उसका अंधेरा मेरे प्रति खासकर क्रूर बना।

क्या मैं उस रोहिणी तक जा सकता हूं जिसके वस्त्र जीर्ण अज्ञान है, जिसकी सूरत मूर्खता है, जिसका आभूषण छल है ? उसके नेत्र साहस कर उठे क्योंकि उस क्षण उसे लगा यह नेत्र उसके नहीं स्वयं कमलनयन के हैं। उनमें इतनी ही शीतलता और रस भरे आए थे। कृतज्ञता से भरा वह यों ही बैठा रहा।

रोती हुई रोहिणी चुप हो गई। नेत्रों की इस नई चमक को उसने देखा और उससे पहले जैसे कोई शक्ति उसके हृदय को जगाने आई थी। हाथों से आंसू पोंछ विस्मय से उसने फिर देखा। कहने को कुछ नहीं था। पर ऐसे क्षणों पर कहने की जरूरत होती है क्या ?

× × ×

रात को कुछ युवकों का एक झुण्ड आया मशालें लेकर और उन्होंने घर को आग लगा दी। आरुणी बाहर निकला तो उस पर प्रहार हुआ। उसी समय भीड़ को चीरती हुई रोहिणी वहां पहुंची और दूसरा, तीसरा, चौथा प्रहार उसने अपने ऊपर ले लिया। वह आरुणी से बुरी तरह चिपट गई थी। प्रहारों की तीव्रता के कारण उसके मुंह से खून निकल रहा था।

"रोहू तुम जाओ" आरुणी बोला।

"रोहू तो हमारे यहा मछली को कहते हैं।" खून थूकती हुई वह हंसी। वे आंसू जो न जाने कितने युगों से आरुणी के वक्ष मे घुट रहे थे, ऐसे बादलों की तरह जिनसे बूंद नही बन पाती, अचानक कुछ आंसुओं मे बदल गए।

रोहिणी उन्हे देखकर अनदेखा करने लगी। लाठी का तेज प्रहार आरुणी के सिर पर हुआ। तभी एक दर्दीली और आवेश-भरी चीख के साथ रोहिणी ने उछलकर लाठी को ऊपर हवा मे ही थाम लिया। क्रोध और दु:ख से उसके होंठ कांपे "वरुण की सौगन्ध।" उस युवक की आंखों मे घूरती हुई वह बोली, "मैं तुम्हारा रक्त पी जाऊंगी।"

"तुम जाओ रोहिणी" उसे दूर धकेलता हुआ आरुणी बोला, "तुम जाओ। तुम्हे मेरी सौगन्ध है।"

"मैं नही जाऊंगी आरुणी," उसने पहली बार उसका नाम लिया था "तू चोट खाए और मैं चली जाऊ। अच्छी शिक्षा देता है तू।"

"तुझे मुझसे इतनी सहानुभूति क्यों है?"

"मुझे सहानुभूति नहीं है पगले। मुझे प्यार है।"

तभी कुछ हलचल हुई। कुछ भद्र लोग भीड़ को चीरते हुए आए। "छि:! यह क्या कर रहे हो? यह आर्यों को शोभा नही देता।" भीड़ तितर-बितर होने लगी।

एक सम्भ्रान्त वृद्ध ने आकर आरुणी के कन्धे पर हाथ रखा, "आओ पुत्र, तुम मेरे घर चलो।" आरुणी ने अपने जलते घर को देखा और नत मस्तक हो गया।

रोहिणी और आरुणी उनके घर चले गए। रोहिणी की पीठ मे काफी चोट आई थी। आरुणी की चोटें मामूली थी।

रात को पिछले पहर मे अकेले कमरे मे दीपशिखा पर झुका हुआ आरुणी रोहिणी के एक जख्म के लिए सलाई पर एक भस्म बना रहा था। तभी रोहिणी ने दोनों बाहे उसके गले मे डाल दी। "तुम मुझे अपना सकोगे आर्य। तब भी जब मैं इतनी बुरी हूं।"

"तुम बुरी नही हो।"

"तो तुम नाराज नही हो कि मैंने तुम्हारा तिरस्कार किया था।"

"नही देवी। मैंने तो तुममें ईश्वर की प्रयोगशाला देखी है जहां भाव-

नायें बनती हैं। बहुत दिनों तक मैं उस घटना पर तुमसे नाराज रहा। मगर अब मुझे स्पष्ट दीख रहा है। तुम्हारे किशोर हृदय में तब प्रेम अनेक धाराओं के रूप मे था जो कुछ सच्ची थी कुछ झूठी और तुम उनको अलग-अलग नही पहचान पा रही थी।"

"मैं तुमसे ऐसा प्यार करूंगी आरुणी कि सारी दुनिया देखेगी।" रोहिणी की आंखें भर आई थी, "मेरे पास कहना नही आता। पर सच देख लेना। मेरा प्यार इस दीये की तरह हमेशा ऊपर की ही ओर उठता रहेगा।"

आरुणी उसकी आंखो में देख रहा था। क्या यह स्वप्न था? उसके स्वप्न को साकार करने के लिए ईश्वर प्रदत्त वरदान था?

रोहिणी बोली, "आरुणी चलो यह नगरी छोड़कर कही और चलें। हिन्दुकुश के जीवन से अब मैं ऊब चुकी हूं। पहले तो प्यारा लगता था। मगर तुम्हारी बातें सुनते-सुनते वहां कोहरा-सा छा गया है। मुझे वह जीवन अब अज्ञान और पतन की शृंखलाओ से जकड़ा हुआ लगता है। मुझे आर्यों से नफरत थी। वे लुटेरे हैं जिन्होंने हमारा घर छीनकर हमे हिन्दुकुश मे भगाया। परन्तु तुमने मुझे बदल दिया। अब तुम्हारे जैसा मुझे कोई नही लगता आरुणी। मैं या तो तुम्हारे साथ रह सकती हूं या संन्यास लेकर देवी रम्भा के आश्रम मे जाना होगा। मेरा और कोई ठिकाना तुमने नही छोडा। सच तुमने मुझे बर्बाद कर दिया। आरुणी" एक चंचलता में उसकी आंखें मुसकरा रही थी।

"मैं डर गई थी कि इस बार मेरे पिता उपचार के लिए तुम्हारे पास लायेंगे भी या नही या कहीं और···। सच कहती हूं वरुण की सौगन्ध जरा भी पीड़ा नहीं लगी पेट मे। रास्ते-भर बस यही धुक-धुकी रही कि पिता देखो कहां ले जाते हैं। पीड़ा तो तब शुरू हुई जब तुम्हारे घर हम आ गए और तुमने मेरे घाव को छुआ।"

"रोहिणी मैं सोच रहा हूं अब हम सचमुच कहीं और चलेंगे।"

"चलो आर्य कही दूर। मैंने तुम्हारे विचार सुने हैं। मैं तुम्हारा साथ दूंगी। हम तुम कही दूर जाएंगे। जहां यह संकीर्ण दुनिया नही होगी, जहा मनुष्य आर्य और अनार्य नामों से नहीं जाना जाता है। हम वरुण की उपासना करेंगे जो हम सबका रक्षक हैं···" उसकी आंखों में एक तेज था। वह दूर देख रही थी किसी भविष्य में जिसकी कल्पना उसके दिल मे बसी थी। मगर उसके होंठ थम

गए थे क्योंकि उसके पास शब्द नही थे; न उन विचारों को पकड़कर व्यक्त करने की सामर्थ्य थी जो उसके मन में धुएं की तरह उठ रहे थे।

उसकी बातो ने आरुणी के मन पर इन दिनों रही चिन्ताओं और दुविधाओं को दूर कर दिया था। उसे भविष्य अपने अनुकूल और नये जीवन की सम्भावनाओं से भरा लग रहा था।

"तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी मेरे जीवन को देवी। यह यज्ञ तुम्हारे बिना नही हो सकता था।"

"मैं कृतार्थ हुई देव। मगर सुनो हम क्यों न आज ही भोर से पहले चल दें। मैं नही चाहती कि मेरे कबीले के लोग जान जाएं कि मैं जीवित हू। मैं उनके लिए आज ही मर जाना चाहती हूं ताकि हम निर्विघ्न नया जीवन शुरू कर सकें। कुछ वर्षों बाद जब हम कुछ कर लेंगे तो तुम आना मेरे साथ माता-पिता का आशीर्वाद लेंगे।"

उसी रात उन्होने गन्धर्व विवाह कर लिया और वहां से चल दिए। आरुणी के जले घर को देख रोहिणी के पिता ने अनुमान लगाया कि वे दोनों जल कर मर गए थे।

सवेरे के समय उन्हे राज सैनिकों ने पकड़ लिया। उन पर अभियोग चलाया गया आर्य संस्कृति के विरुद्ध षड्यन्त्र करने का।

"हे राजन तुम्हारा यह अभियोग असत्य है।" आरुणी बोला, "मैंने तो आर्य संस्कृति को डूबने से बचाने के लिए यह उपक्रम किया है। इसका मूल्य मेरी नजरों मे भी उतना ही है जितना तुम्हारी नजरों में। पूर्वजों से मिली इस अमूल्य सम्पदा की रक्षा करना मैं भी अपना धर्म समझता हूं। परन्तु जिसे तुम रक्षा समझ रहे हो वह तुम्हारा भय है अपने पापो के प्रति। वह एक व्यक्ति को नही बचा सकता, पूरी जाति की बात तो छोड़ो। आर्य पूर्वजों ने अनार्यों को पराजित किया। ठीक है, उनकी सम्पत्ति छीनी, उन्हे बहिष्कृत किया, उनकी सभ्यता को कुचला और उन्हें बनों का, पर्वतों का जीवन दिया। ठीक है मगर इससे आगे जानते हो क्या हुआ? इससे आगे आर्य अपने पापो से डरने लगे। वे अनार्य संस्कृति से, अनार्य ज्ञान से, अनार्य विचारों से डरने लगे और आंख मीचकर उनको झूठा और मूर्ख कहने लगे। यह विष हममें फैलने लगा है राजन। मैं नही चाहता कि आर्थिक और राजनैतिक कारणों से जो हमारे पूर्वजों ने किया वह हमारी आत्मा मे सत्य कहकर

उतारा जाए। सत्य के प्रति यदि यह दुराग्रह रोका न गया तो हमारी आत्मा में प्रतिकार स्वरूप झूठ के और रूप प्रकट होंगे। आने वाली संतति उन्ही झूठों के बीच सिर धुनती रहेगी। हम कमजोर और अन्ध विश्वासी हो जाएंगे। जो हम करेंगे वह हमारे साथ भी होगा। कोई विदेशी शक्ति किसी दिन हमें भी पराजित करके दस्यु, राक्षस आदि नामों से विभूषित करेगी।"

सभा में कुछ प्रतिरोध हुआ। राजा भी इस भाषण से ऊब गया था। वह कुछ कहने वाला था कि उसी समय वृद्ध अमात्य स्थिति को भांपकर उठ खड़े हुए, 'विज्ञ-जनो, महाराज और सभासदो, हमारी जाति की परम्परा रही है कि अभियुक्त को हम पूरी स्वतंत्रता देते हैं अपने बचाव मे बोलने की। आर्य जाति न्याय के बीज रेत में नही डालती।"

सभा में फिर हलचल हुई। एक सभासद खड़ा होकर बोला, "महाराज की जय हो। हम आर्य संस्कृति की आलोचना सुनने नही आए हैं।"

दूसरा बोला, "यह विचार तो हम पारचिनार की सभाओं में सुन ही रहे थे। यहां आने की क्या जरूरत थी। हमे न्याय चाहिए।"

वृद्ध महामात्य की भवें तन गईं, "तुम्हारा आचरण निन्दनीय है आर्य। जिस सभा मे इतने विद्वान उपस्थित हों उसमें केवल महाराज को नमन करना आर्य-संस्कृति के विरुद्ध है।"

सभा में सन्नाटा छा गया। महाराज को भी यह बात बुरी लगी। मगर वे विज्ञजनों को रुष्ट नही करना चाहते थे अतः मौन रहे। उस युग मे राज प्रासादों में एक नई विचारधारा पनपने लगी थी। ऋषियों और ज्ञानियों को आर्य परपरा राजशक्ति से ऊंचा स्थान देती रही थी। अब एक आवाज उठने लगी थी कि राज-नीति से ज्ञानियो और ऋषियो का क्या सबंध है? दोनो क्षेत्र अलग-अलग है। दोनों को एक दूसरे के क्षेत्र मे दखल नहीं देना चाहिए। मगर अभी इन विचारो को प्रच-लित होने मे कुछ शताब्दियों की देरी थी। ये अभी कुछ वर्गो तक ही सीमित थे। अभी प्रचलित मान्यता यही थी कि ऋषि और ज्ञानी सनातन सत्य और निर्भीक, निष्पक्ष धर्म के प्रतीक थे और राजा जातीय स्वार्थ तथा अस्थायी हितो का प्रतीक है। जाति को स्वार्थ और अस्थायी सत्यों की दलदल से बचाने के लिए आवश्यक है कि राजा ऋषियों और ज्ञानियों की आध्यात्मिक सत्ता के आधीन काम करे। दोनों समान कर दिये गये तो राजनीति सनातन सत्य को अपने प्रपंच और तंत्र-

जाल से ढक देगा।

सभा में अभी भी विक्षोभ था। महामात्य उन्हें रोकते हुए बोले, "विज्ञजन और महाराज ही इसका निर्णय करेंगे।"

महाराज ने प्रश्न भरी आंखों से विज्ञजनों की ओर देखा। कुछ देर विचार-विमर्श के बाद वयोवृद्ध आचार्य चन्द्रगिरि ने खड़े होकर कहा, "महाराज, हमारी सम्मति है कि आरुणी को अपनी बात कहने दी जाए।"

'आरुणी तुम मेरे प्रश्न का उत्तर दो," महाराज बोले, "तुमने नारी को मुक्ति के लिए आवश्यक कहा, स्वतंत्रता आर्यों का आदर्श है। हृदय को बंदी बनाकर तुम कौन-सी मुक्ति का स्वप्न देख रहे हो?"

"महाराज और विज्ञजनों को मेरा प्रणाम स्वीकार हो। हे राजन! हृदय की स्वतंत्रता आर्यों का आदर्श नहीं है। आज कुछ क्षेत्रों में यह विचार जो उठ रहा है इसके अंकुर आर्य संस्कृति में नहीं हैं। स्वतंत्रता मस्तिष्क का आदर्श है। हृदय का आदर्श प्रेम है, स्वतंत्रता नहीं। स्वतंत्रता को हृदय का आदर्श बनाना वास्तव में हृदय को मस्तिष्क का दास बनाना है। राजन हृदय विपरीतों का समन्वय है। यहां ब्रह्म का निवास है जिसमें स्वतंत्रता-परतंत्रता, पाप-पुण्य सबका लय हो जाता है। प्रेम एक ऐसी परतंत्रता है जिसका अनुभव कर लेने पर पता चलता है कि यह स्वतंत्रता से भी अधिक स्वतंत्र है। ऐसा न होता तो हमारे पूर्वज प्रेम को सर्वोपरि स्थान न देते। उन्होंने तो यहां तक कहा है कि ज्ञान भी केवल वही ज्ञान है जो प्रेम से जन्मा है। मस्तिष्क की स्वतंत्रता तभी तक स्वतंत्र है जब तक मस्तिष्क में प्रेरणा हो प्रेम की, सेवा करने की। ज्ञान साधना और प्रसार, निर्भीकता और स्पष्टवादिता तभी तक अर्थमय है जब तक उनका उद्देश्य प्रेम की सेवा है। प्रेम से हटकर ये सब अहंकार बन जाते हैं। ऐसा न होता तो जनार्दन श्री कृष्ण राधा को, गोपियों को, ज्ञानी जनों से भी अधिक महत्व न देते। हृदय का आदर्श यदि स्वतंत्रता होता तो आदि मुनि नारद अपनी वीणा पर स्वर्ग से लेकर पृथ्वी तक प्रेम के गीत न गाते। 'सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा।"

"हे राजन! इस विज्ञ सभा से प्रेम की महत्ता छुपी नहीं है। "कंठ वरोधं रोम चाश्रभिः परस्परं पपमानाः। पावयन्ति कुलानि पृथिवी च।"

शास्त्र कहते हैं एक सच्चा प्रेमी समस्त पूर्वजों और पितरों की आत्मा को

शांति और सुख देता है। आर्य परंपरा कहती है केवल प्रेम से प्रेरित होकर जो कार्य करते हैं उन्हें कर्म नही बांधता। वे कर्म मुक्त हैं।

"प्रेम कार्य प्रेमैव कार्यम्।"

"हे राजन। ये मन, बुद्धि, भावनायें सब माया के अनेक रूप है। पुरुष और नारी में इनके रूप भिन्न हैं। न तो अकेला पुरुष इनके द्वारा ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है, न नारी। आवश्यकता है इनके रूपांतरण की। जब पुरुष और नारी मे प्रेम का दीप जलता है तो उनकी बुद्धि, भावनायें विपरीत होकर भी पास-पास आते हैं। प्रेम के प्रकाश में उन्हें अपनी सीमाओं और अपूर्णता का पता चलता है। उनका अभिमान जल जाता है। उनका एक दूसरे में लय हो जाता है। तब इन दोनो की जगह एक नई बुद्धि, एक नई भावना, पुरुष और नारी दोनों में प्रकट होती हैं। इनमें दोनो के गुण है। तब वे इस योग्य होते हैं कि ब्रह्म को प्राप्त हो सके। मैंने ब्रह्मा के उसी सत्य को साकार करने का स्वप्न देखा है जो उन्होंने सृष्टि के आरंभ में मनु और शतरूपा पर प्रकट किया था।

"मैं नही, यह नई विचारधारा जो नारी को नर्क-द्वार मानने लगी है, यह आर्य संस्कृति के आधार स्तम्भो को तोड़ रही है। यों तो हर व्यक्ति अपने ढंग से ब्रह्म का साक्षात्कार करता है। मगर नारी को एक स्वर से नर्क कहना दुराग्रह है, राजन्!"

"तुम धन्य हो आरुणी।" आचार्य चन्द्रगिरी के नेत्र छलछला आये थे। उनके हृदय ने मौन आर्शीवाद दिया, "आर्यावर्त के महान ऋषियों में तुम्हारी गणना होगी। मेरे हृदय को स्वतंत्रता की निरर्थकता समझा कर तुम्हारे शब्दों में प्रभु ने मुझे मेरी बरसों की भटक से मुक्ति दी है।"

कहते हैं सच्चे हृदय के उद्‌गार मौन होकर भी हृदयों तक पहुच जाते हैं। सभा का हृदय पलटने लगा था। एक नई इच्छा अधिकांश सभासदों के मन में जाग गई थी आरुणी बोले, और बोले। ज्ञान-गर्व से हीन यह पुरुष कुछ कह रहा था जो सोई स्मृतियो को छेड रहा था। अस्तित्व की वो गहराइयां जो सोने लगी थी उन्हें जगा रहा था। प्रचलित विचारों से हटकर सोचना कितना कठिन था, वह विज्ञमण्डल अच्छी तरह जानता था। जिस तरह कुएं से जल खीचते हुए रस्सी अपने आप पत्थर के घिसे हुए हिस्से पर चली जाती है, जिस तरह जल ढाल की ओर तेजी से बहता है, उसी तरह मस्तिष्क की भी आदत है. पहले ही से बने किसी

पथ पर बढ़ने की। सभी वादों से हटकर केवल सत्य के क्षीण प्रकाश में सोचना और उस सम्पदा को तेज बहाव से बचाकर रखना कितना कठिन है ? यह तभी संभव है जब काल की गुजलकों से मस्तिष्क मुक्त होना जान गया हो। विज्ञजनों मे कुछ ने उस दिन चिकित्सक आरुणी मे एक महान ऋषि के दर्शन किए।

आरुणी बोला, "राजन ! यह उचित नही है कि राजनैतिक कारणों से जो प्रचार किया जा रहा है उसे दार्शनिक और धार्मिक तल पर भी किया जाए। राजनैतिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए शताब्दियों से अनार्यों को असभ्य, राक्षस, दैत्य आदि अनेकों नामो से पुकारा गया। उन्हे क्रूर, स्वार्थी, नीच कहकर जनता के सामने चित्रित किया गया। इस झूठ को हम दार्शनिक, बौद्धिक और धार्मिक मान्यता देने लगे है। यह भावी विनाश का चिह्न है। हर झूठ जो हितकारी लगता है उसे हम आत्मा मे पालते हैं। मगर सत्यान्वेषी दूर तक देखते हैं। राजनैतिक झूठों को राजनीति तक ही रहने दो। अनार्यों के विश्वासों, विचारो, भावनाओं को बर्बर कहकर हम जो कुचल रहे हैं ये एक विनाश की शुरूआत है। सत्य को कुचलकर हर आत्मा अपने ही हिस्सो को कुचलती है। फलस्वरूप हम बौद्धिक होते जा रहे है। हमारी भावनायें नष्ट होती जा रही हैं। हमारे ऋषियों ने दर्शन को भी वेद मे काव्य बनकर प्रकट होना सिखाया। और आज हमारे यहां जगह-जगह दार्शनिक पैदा होते जा रहे हैं। कवि खत्म हो रहे है। जो हैं उनकी उपमायें और अलंकार एक से होते जा रहे हैं। मैं चाहता हूं कि यह विनाश यहीं रुक जाए।"

विज्ञजनो की राय हुई कि आरुणी और रोहिणी को दण्डदेना अनुचित होगा। परतु वह सभा इस पक्ष में नही थी कि उन्हें अपने विचारो पर पारचिनार राज्य में प्रयोग करने दें। अतः उन्हे छोड़कर जाने का आदेश हुआ।

पारचिनार छोड वे सिन्धु की तलहटियों मे चले गए थे। वहीं आरुणी ने एक उद्यान खरीदा जिसके बीच मे एक सुंदर भवन था। उसी में दुनिया से दूर वे रहने लगे। वर्षा ऋतु थी और गगन मेघ गर्जना से भरा रहता था। उड़ते हुए हंसों के सफेद पंख सुरमई बादलो की पृष्ठभूमि में बड़े मन-भावने लगते थे। मगर कोई शक्ति थी जो उसे रोहिणी से दूर रखती थी। चाहत का वह तीव्र आकर्षण जो कभी उसके हृदय मे मंजरी के लिए जगा था, मिट गया था। वह उसे जगाना चाहता था। आज तक उसकी जरूरत नहीं पड़ी थी क्योंकि उसे कभी किसी से

प्रेम नहीं हुआ था। उसकी आत्मा किसी के लिए जलना नही सीखी थी। उसमें प्रेम ज्ञान से जन्मा था मगर प्रेम से ज्ञान नही जन्म ले पाया था। पहली बार उसकी आत्मा प्रेम की अग्नि में जली थी। इस अग्नि मे आत्मा जल गई थी और प्रेम की यह अग्नि ही आत्मा बन गई थी। उसने जाना था कि जिसे वह आज तक आत्मा समझता रहा था वह अहंकार था। उसे बेधकर उसमे प्रेमात्मा जगी थी। जैसे गर्भ के अंधेरों को बेधकर शिशु प्रकट होता है।

इस संघर्ष मे उसने जाना था कि स्वयं आत्मा के अनेक तल थे। जब आत्म-तत्त्व किसी गहरे तल में जगता है तो आज तक जाना गया आत्म-तत्त्व असत् हो जाता है, माया हो जाता है। इस विगत आत्म तत्त्व या माया को भेदे बिना हमारी यह नई जागृति शरीर मे प्रकट नही हो पाती। इस प्रकटन के बिना यह जागृति अधूरी है। पार्थिव जीवन इससे प्रकाशित नही होता। मनुष्य जाति की चेतना तब तक विकसित नही होती जब तक यह नया जगा आत्म तत्त्व शरीर में बिखर न जाए। जैसे सूर्य का तेज ऊषा की लालिमा बन होती भोर के साबरे मुख पर खिल आता है, उसी तरह मिट्टी के बने इस धूमिल शरीर के कण-कण मे यह नई जागृति प्रकट होनी चाहिए।

वह देख रहा था स्वयं रोहिणी कुछ अवरोध महसूस करती थी। उसे लगता था जैसे कोई दीवार है दोनो के बीच। यह शरीर जैसे आरुणी का नहीं है। प्रेम ने उन दोनो की आत्माओ को केंचुली की तरह अलग कर दिया था। दोनों में अब एक ही प्रेमात्मा धड़क रही थी। मगर आरुणी का शरीर जैसे आज भी उस केंचुली या विगत आत्मा का ही था। प्रेमात्मा उस शरीर में एक अजनबी था।

इस मंथन मे आरुणी ने एक नया सत्य जाना। हमारी आत्मा शरीर में जीते-जीते कुछ विश्वासों, विचारों, जिदों और मूर्खताओं का जाल बुन लेती है। वह जाल उस आत्मा के साथ लीन नही होता यदि वह आत्मा स्वयं किसी और गहरे आत्म-तत्त्व को जन्म लेकर लीन हो जाए। वही जाल एक दीवार बन जाता है इस नई जन्मी आत्मा और शरीर के बीच। यह दीवार आत्म-शक्तियों से बनी है। यह काफी है कि हमारी आत्मा का लय हो जाए और उसकी जगह प्रेमात्मा जगे जो दोनों में एक है। इस प्रेमात्मा को उन आत्म-शक्तियो को भी अपना बनाना है जो आज तक अहंकारी आत्मा का ही काम करती रही है, केवल उसे ही अपना स्वामी समझती रही है।

ये आत्मिक शक्तियां व्यक्त और अव्यक्त के बीच की संधि हैं, ये शरीर और आत्मा के बीच पुल बनाती है। इन शक्तियों को जीतना आरुणी के लिए जरूरी था। क्योंकि उसका विश्वास अकेले मोक्ष प्राप्त करने में नहीं था। एक मान्यता आर्यावर्त में प्रचलित हो चुकी थी कि सभी आत्मायें अलग-अलग निर्वाण प्राप्त करती हैं; मगर आरुणी का स्वप्न था अपनी प्रेयसी के साथ निर्वाण पाने का। यह स्वप्न उसका पागलपन नहीं था। आदिकाल से यह स्वप्न आर्यावर्त के महान ऋषियों को प्रेरित करता रहा है।

मुझे वह मार्ग ढूंढना है जो नारी का त्याग किए बिना मुक्ति दे देता है। उसे पाए बिना मैं ब्रह्मा की आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। हर युग में मनु और शतरूपा का मार्ग साथ-साथ है। यह अज्ञान तिमिर है जो इन्हें एक दूसरे के मार्ग की बाधा बना देता है। उस माया को जीतना होगा अन्यथा मनुष्य जाति एक अनावश्यक संघर्ष मे जीएगी। नारी को अपनाकर भी उसे नर्क का मार्ग समझती रहेगी।

आत्मशक्तियों की इस दीवार को अन्य ऋषिगण नहीं भेद रहे थे। उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं थी। वे एक समाधि की ओर उत्तरोत्तर बढ़ते रहे थे। मगर आरुणी ने तो साधना का मार्ग दूसरा ही चुना था, जो बार-बार समाधि से समाधिहीनता को लौटता था, आत्मा की सूक्ष्म गहराइयों से कोलाहल और व्यर्थ के संघर्ष से भरी इस दुनिया को लौटता था। उसकी समाधि केवल पूर्ण शांति या ज्ञान की तलाश नहीं थी। वह पहले अपने ज्ञान से धरा पर जीए जा रहे मनुष्यों के रोजमर्रा के जीवन को आलोकित करना चाह रहा था। वह चाहता था कि उसके साथ पूरी मनुष्य जाति भी मुक्ति की दिशा में एक पग बढ़ाए। साधारण लोग मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं कर रहे थे। उनका जीवन असत्य, अज्ञान, अहंकार, लोभ, लिप्सा के आवरणों में विकृत होता जा रहा था। उनकी आत्मा टूट रही थी। आरुणी को सबसे अधिक दुःख इस बात का था। वह इस बात के लिए तैयार था कि उसकी मुक्ति इस जीवन में न हो। वह भवसागर मे फंसी हुई उन असंख्य आत्माओं को अपनी आत्मा का उजाला देना चाहता था। शायद जीवन के उन अंधेरों मे भवसागर के काले भयावने पानी में तैरते रहने में उसकी आत्मा का आलोक उनके कुछ काम आ सके।

इसके लिए उसकी आत्मा तड़पती रही थी। इसी वेदना ने उससे राजदर-

बारो में नौकरी कराई, उसे दस्यु बनाया, उसे कुंद लुहार के घर रखा। यही वेदना उसे इस संसार में भटकाती रही। इसी ने ऋषि कुमारो का साथ छुड़ाकर उसे भील बालकों का साथ दिया था। इसी ने उसे पढ़ाई से अधिक खेल में रुचि दी थी।

अपने जीवन के उद्देश्यों को इतना स्पष्ट देख उसे एक गहन सुख की अनुभूति हुई। मैं और ज्ञान नहीं चाहता, और प्रेम नहीं चाहता। पहले मेरा ज्ञान, मेरा प्रेम मेरे शरीर में कण-कण बन बिखर ले। मन की शक्तियों ने जो यह दीवार बीच में खड़ी कर रखी है इसे भेदना सीख लूं। यह आत्म-शक्तियों की दीवार सजीव थी। इसे तोड़ा नहीं जा सकता था। इस सजीव शक्ति को माता मान इसके गर्भ से पुनर्जन्म लेना था। यह मार्ग युगो पहले परम ज्ञानी हनुमान ने अपनाया था। सर्पो की माता सुर्सा के मुख मे प्रवेश कर निकल आना सांकेतिक पुनर्जन्म था। सर्पो के माता के गर्भ से इस तरह पुनर्जन्म लेकर उन्हें वे सब शक्तियां प्राप्त हो गई थीं जो सुरसा के पास थीं। एक उच्च तल की आत्मा निम्नतल की आत्म शक्तियो को इसी तरह जीतती आई है। इसी विधि से उन्होने लंका की रक्षा करने वाली लंका राक्षसी को अपने पक्ष मे किया था।

आत्मिक शक्तियों से संघर्ष करने की विधि अनोखी है। यहां बिना तलवार के लड़ा जाता है। यह आलोक और तिमिर की, प्रेम और अज्ञान की, लड़ाई है। जब दोनों ओर आत्मिक शक्तियां हों तो संघर्ष बहुत कठिन हो जाता है। हिंसा, क्रोध, घृणा यहां काम नहीं आते।

× × ×

इन्हीं दिनों आरुणी को लगा मन्जरी के प्रति उसकी आसक्ति अब भी उसके हृदय के किसी कोने में गरम थी। यदि वह आसक्ति आज तक जीवित है, यदि रोहिणी के प्रति इस तीव्रप्रेम के होते हुए भी वह आसक्ति है तो वह एक सत्य है। सत्य को कुचला नहीं जा सकता। मगर यह है क्यो? प्रेम को विचलित करना ईश्वर की इच्छा नहीं हो सकती। फिर यह क्या है?

दूर प्रश्न के उत्तर ढूढ़ता रहा। उसने आज तक
दिए निराश नहीं किया था। अनुभव ने उसे
इन्हीं प्रश्नों के उत्तर देकर होता है। वह हर
ता था, मस्तिष्क या हृदय से उनके उत्तर नही
से मांगता। आत्मा उसके लिए वह तत्त्व थी

प्रेम साधना में लीन आरुणी था।

किसी भी प्रश्न को बिना उत्तर आत्मा ने दिया। मन्जरी के प्रति आसक्ति को
सिखाया था कि आत्मा का विका धिक्कार पाकर पवित्रता की एक आग उसकी
प्रश्न अपनी आत्मा के सामने रख चाहने लगा था। मन्जरी के प्रति चाह अपवित्र
मांगता था। वह ये उत्तर आत्मा बा दिया था। उसकी आत्मा जैसे पत्थर की हो
जिसे वह "मैं" से संबोधित करता से, मन्जरी से और उन सबसे जिन्होंने उसे

इस प्रश्न का उत्तर भी उसकी को कुछ नहीं रहा था और वह घर छोड़कर
उसकी आत्मा ने कुचला था। मां का व्यक्तित्व चतुर्मुखी हो गया था मानो पृथ्वी
आत्मा में जगी थी। वह पवित्रता बार आरुणी बना दिए थे। कभी वह अपने को
थी। अत: उस चाहना को उसने , कभी उसे अपनी आत्मा आंसुओं से भरी हुई
गई थी। फिर उसकी आत्मा में जीवन हवाई, झूठा, दंभपूर्ण हो गया है। उसका
अपना जाना था वार्तालाप करने वरण में मिट गया है। कभी उसे लगता उसे
चला गया था। नए जीवन में उसी तरह सहिष्णु हो गया है।
जल, वायु, अग्नि चारों ने उसमें मन्जरी के प्रति जो उसकी वासना थी वही इन
अग्नि की तरह भड़कता हुआ पार्य की किरणें इंद्रधनुष के सात रंगों में टूट जाती
लगती। कभी वह देखता उसका की अनुकंपा से, फिर वही वासना प्रकट हो रही
सारा अपनापन दरबार के वा र दियां था उस वासन से मुक्त होने का। यह
क्रोध ही नहीं आता। वह पृथ्वी । उससे पुनर्जन्म लेना है जैसे बीज जमीन के

सोचते-सोचते उसे लगा कि जन्म लेता है। वह वासना एक जातीय पाप था
सात रूपों में टूट गई थी; जैसे सू मिला था। ये जातीय पाप हर आत्मा को घेर
हैं। इन सातों को लय कर ईश्वर र आत्मा से चिपट जाते हैं कि उन्हें वह अपनी
थी। प्रभु ने उसे एक और अव र चलने लगती है। इनसे निपटने का मार्ग इनसे
मुक्ति उसे कुचलकर नहीं मिल आलोचना करना तथा अपना लेना ये चारों ही
अंधेरों को गर्भित कर उनसे पु र इनसे ये दूर नहीं होते बल्कि आत्मा को और

जकड़ लेते हैं। आत्मा को ध्यान रखना है कि इन जातीय-पापों को सत् का दर्जा नहीं देना है। इन्हें असत् मान इनका स्वागत करना है। आत्मा में जैसे-जैसे यह ज्ञान दृढ़ होगा कि वह स्वयं सत् है और ये पाप असत् है; इनकी विकरालता और शक्ति इनके न होने की परिचायक है; आत्मा जब इनसे न भयभीत होगी, न मोहित, न क्रुद्ध और न इनसे उलझेगी तभी वह इनसे मुक्त होगी। आत्मा में यह शक्ति इनके इस स्वरूप पर निरंतर मनन करने से आती है ?

जब उसकी आत्मा मे मन्जरी के प्रति अपनी वासना को स्पष्ट देखने की शक्ति जग गई, और जब उसे सात रूपों मे तोड़ना जरूरी नही रहा, तो आरुणी रोहिणी सहित फिर एक बार सिद्ध क्षेमनिधि के आश्रम की ओर चल दिया। कुछ प्रश्न थे जिनके उत्तर उसे क्षेमनिधि से लेने थे।

× × ×

कई दिन हो गए थे उन्हे चलते-चलते पर अभी क्षिप्रा का तट नही आया था। एक रात वे थक कर मार्ग के एक ग्राम में सो रहे थे। आधी रात के लगभग किसी आवाज ने आरुणी को जगा दिया। रोहिणी गहरी नींद सो रही थी। उसके जरा से खुले होंठ ऐसे लग रहे थे मानो कोई लाल रंग की कमल कली खिल गई हो। उसका मुंह चांदनी मे नहीं था अत: कमरे के अंधेरे मे कुछ सांवला-सा लग रहा था। इतना लावण्य उस कृत्रिम श्यामलता से फूट रहा था कि मुग्ध नेत्रों से आरुणी उसे निहारता रह गया। उसका मन हुआ रोहिणी को जगाकर उसे अंक में लेने का।

तभी किसी ने उसे नाम से पुकारा। उसने खिड़की के बाहर देखा। खुली चांदनी में सिद्ध क्षेमनिधि खड़ा था। पर उसकी शक्ल बिलकुल बदल गई थी। उसका मुह थका हुआ था और निर्जीव-सा लग रहा था और आखें निस्तेज थी।

वह फौरन बाहर गया, "आचार्य। आप यहां कैसे आ गए ? मैं तो आप से ही मिलने जा रहा था।"

उसकी इतनी खुशी के उत्तर मे क्षेमनिधि के चेहरे पर मुसकराहट नहीं आई

न ही उसने उसके अभिवादन का उत्तर दिया। वह किसी गहरी चिंता में डूबा हुआ लगता था। "वत्स, आरुणी। मैं मर चुका हूं।" एक प्राणहीन गूंजती-सी आवाज में क्षेमनिधि बोला।

कोई जकड़न आरुणी को अपने हृदय पर महसूस हुई। उसने मन-ही-मन ईश्वर को याद किया। "कैसे सिद्धवर, यह कैसे हुआ ?" वह क्षेमनिधि की ओर बढ़ता हुआ बोला।

"आगे मत बढ़ो आरुणी। प्रेत की ओर नहीं बढ़ते।" क्षेमनिधि बोला, "मैं तुम्हें बताता हूं मैं सशरीर स्वर्ग जाने के उद्देश्य से गया था। मैंने बहुत बर्फीले तूफानों को पराजित किया। भूख, शीत मुझे पराजित न कर सके। मगर आज सोते हुए एक बर्फ का पहाड़ मेरे ऊपर खिसक आया और मेरा शरीर छूट गया। परंतु मेरी मुक्ति नहीं हुई वत्स। जब मेरा सारा योगबल और सिद्धियां मुझे मुक्ति की दिशा में न ले जा सकीं तो अपमानित-सा उस गति की प्रतीक्षा करने लगा जो यम ने मेरे लिए निश्चित की है मगर यमदूत भी मुझे लेने नहीं आए। तब मैंने जाना कि मैं प्रेत बन गया हू और मुझे तुम्हारी याद आई। दूसरे ही क्षण मैं यहां पहुंच गया।"

"तुम मुझसे क्या चाहते हो सिद्ध ?"

"मेरी मूर्खता और मेरे शिष्यों ने मिलकर मुझे प्रेत बना दिया है। तुम मेरे आश्रम मे जाओ। वे यह विश्वास करते हैं कि मैं सशरीर स्वर्ग पहुंच चुका हूं। यही घोषणा मैंने की थी। वहां आश्रम में मेरी एक मूर्ति बनाकर वे पूजा करते हैं। उस मूर्ति को तोड़ दो। उन्हें सत्य से अवगत कराओ। उन्हें बताओ कि मैं स्वर्ग नहीं गया। मेरी शून्यगति हो गई है। जब तक उनका विश्वास मुझमें रहेगा मुझे प्रेत बने रहना होगा और इस योनि में मुझे बहुत कष्ट है।"

"क्या कष्ट है ? मुझे बताओ मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूं ?"

"सबसे बड़ा कष्ट है मन की खिन्नता। जिस घड़ी से प्रेत बना हूं लगता है जैसे मैं रेत से घिरा हूं। मुझे मोक्ष भी नीरस लग रहा है। यहां जो कुछ भी है वह मेरे अहंकार को बढ़ाने वाला है। जहां भी मेरी दृष्टि पड़ती है मुझे अपना साम्राज्य दीखता है। मैं ही मानो यहां का विधाता हूं। जैसे स्वयं भगवान यहा मेरे अधीन हो। मैं जानता हूं कि मेरे अहंकार को इतनी बड़ी विजय देकर यम ने मुझे दंडित किया है। इससे पहले कि प्रेत लोक की मूर्खता मेरे अहंकार को मजबूत करे, मैं

तुम्हें ढूंढ लेना चाहता था। यह मानवी समझ न जाने कब चली जाए और प्रेतीय अहंकार मुझे घेर ले। मुझे इस योनि से मुक्त कराओ वत्स। मेरे शिष्यों को सत्य बता दो। मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूंगा।"

"उपकार की कोई बात नहीं। मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। मगर एक वचन देना होगा। तुम्हारे शिष्यों के सामने जब मैं तुम्हें बुलाऊं, तुम्हें एक बार आश्रम आना होगा।"

अच्छा कहकर सिद्ध का प्रेत गायब हो गया। जिस अचानकता के साथ वह आया था उसी अचानकता के साथ चला गया। उसके रहते सारी आवाजें थम गई थी। न कुत्ते भौंके थे, न किसी पक्षी की आवाज थी, न झींगरों की आवाज थी। उसके जाते ही एक साथ ये शोर सुन पड़ने लगे।

रोहिणी उसी तरह बेसुध थी।

सिद्ध के आश्रम पहुंचकर उसके दो हजार शिष्यों को समझाना कोई मामूली काम नहीं था। वे उसे भगवान क्षेमनिधि के नाम से पुकारने लगे थे। सत्यव्रत वहां नहीं था। वह उन सबको छोड़कर एक वर्ष पूर्व मालवा चला गया था। वहीं पर उसका तपोवन था जिसमें एक सच्चा गृहस्थ बनने के उपायों पर तीन सौ से अधिक ऋषि, विद्वान और स्नातक विचार-विमर्श करते और ग्रामों, शहरों में जाकर नागरिकों की व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते। आचार्य सत्यव्रत का नाम एक ही वर्ष में मालवा के गांव-गांव में गूंजने लगा था। उस निष्काम गृहस्थ तापसी की सफलता सुनकर आरुणी के नेत्र खुशी से चमक उठे और वह सफेद दाढ़ी और भव्य मुखाकृति उसकी आंखों के आगे उभरी। सत्यव्रत ने अपना पूरा जीवन अपने नाम के अनुरूप जीया था। एक क्षण भी प्रमाद में नहीं खोया था। जीवन के साधारण कार्यों में उसने विराट के दर्शन किए थे। इस जीवन को त्यागकर किसी स्वर्ग की ओर दौड़ना उसे कभी नहीं भाया था। इसी धरा पर इसी तरह सामाजिक जीवन जीते हुए परिष्कार से, सत्यग्राहिता से, सुंदरम् को अवतरित करके मनुष्य उस स्वर्ग को उतार लाएगा—यही सत्यव्रत का विश्वास था। वह इतने साधारण कामों में जैसे लोगों के आंगन में वृक्ष लगाना, पशु पालना, खेती आदि में भी रुचि रखता था। उन्हें आय बढ़ाने के, समृद्धि और संपन्नता के मार्ग बताता था। गृहस्थ जीवन का प्रक्षालन करके सत्यव्रत देश में एक बहुत बड़ी क्रांति ला रहा था। आर्य ईश्वर-साधना और सांसारिकता को

परस्पर विरोधी समझने लगे थे। सन्यास को मुक्ति के लिए परम आवश्यक मानने लगे थे। सत्यव्रत उन्हें याद दिला रहा था कि राजा जनक और भरत चक्रवर्ती जैसों ने गृहस्थ रहकर ही मुक्ति प्राप्त की थी। गृहस्थ जीवन से बड़ा तप और कोई नहीं है। जो कार्य हम समाज में, परिवार में रह कर करतेहैं वह हमें बांधता है मगर जो जानते हैं उनके लिए वही कार्य मुक्ति-मार्ग बन जाता है।

सत्यव्रत साधारण जीवन का आध्यात्मिक और नैतिक स्तर उठाने में लग गया था। यही उसका मुक्ति मार्ग था।

सिद्ध के शिष्यों ने आरुणी की बातों पर विश्वास नहीं किया। वे कुपित हो गए और उससे तुरंत आश्रम से चले जाने को कहा। आरुणी के लिए एक समस्या बन गई। आखिर उसके बहुत प्रार्थना करने पर उसे संध्या की प्रार्थना सभा में सम्मिलित होने की आज्ञा दी गई, मगर अगले दिन प्रातःकाल ही उसे आश्रम को छोड़कर चले जाना था, वह आश्रम अज्ञान और पाखंड से ग्रसित हो चुका था। सिद्ध क्षेमनिधि के वहां रहते ऐसा नहीं हुआ था, क्योंकि अपने प्रदर्शन प्रेम के बावजूद भी उसने सत्य से आंख नहीं हटाई थी। यह केवल दुर्भाग्य था कि इतने महान सिद्ध का अंत ऐसा हुआ कि उसे प्रेत योनि मिली। परंतु उसके शिष्यों में कोई ऐसा नहीं था जो उसकी क्रियाओं के गूढ़ अर्थ को समझता। अतः उसके जाते ही उसके प्रमुख शिष्य उसकी नकल करके यहां तक कि उसकी मुद्रा और चाल-ढाल की भी नकल करके, पाखंडी ढोंगी होते चले गए। वे सब अपने को सिद्ध क्षेमनिधि का अवतार सिद्ध करने की चेष्टा में लगे थे जिससे उस आश्रम के अधिपति बन सकें।

संध्या सभा मे आरुणी ने वह मार्ग नहीं अपनाया था। दिन में वह ज्ञान और तर्क के द्वारा उन्हे समझाना चाहता था। और वे उसे जीवित जला देने को तैयार हो गए थे। क्रोध और आवेश में कुछ अपने डंडे और फरसे तक उठा लाए थे। अनेक अग्रजों ने किसी तरह उन्हे समझा-बुझाकर और याद दिलाकर कि आरुणी मोक्षवासी सिद्ध महाराज को बहुत प्रिय था, आरुणी की जान बचा दी थी। मगर संध्या सभा में आरुणी अपनी जिम्मेदारी पर शामिल हुआ था। अग्रजो ने उसे पुनः ऐसे संकट से बचा पाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी।

संध्या सभा जुटते ही आरुणी ने सीधे सिद्ध क्षेमनिधि का स्मरण किया। सिद्ध अपनी मूर्ति के पास आकर खड़ा हो गया। शिष्यगण भी गुरुवर को देख इसे

उनके मोक्ष हो जाने का और अमरता का प्रमाण समझ क्रोध के साथ आरुणी को देखने लगे। उनके हृदयों की ज्वाला आरुणी को राख बना देने के लिए मानो परस्पर होड़ करने लगी।

अपने शिष्यों को देखकर सिद्ध के प्रेत ने अट्टहास किया। शिष्य इसे उसका आशीर्वाद समझ भूमि पर साष्टांग हो गए, "धन्य हो प्रभु! धन्य हो प्रभु!"

"प्रभु? किसका प्रभु? कैसा प्रभु?" सिद्ध विद्रूप के साथ बोला, "मूर्खो क्यों मेरी शून्यगति कराने पर लगे हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? मैं अब भी कहता हूं आरुणी की बात मान लो और यह मूर्ति तोड़ दो।"

"हमारे प्रभु कितने विनोदी हैं।" उनका प्रमुख शिष्य अष्टांग हंसता हुआ बोला, "दुष्ट आरुणी देख अपने नेत्रों से हमारे प्रभु की अमरता को।"

"अच्छा अष्टांग" सिद्ध एक परेशान आवाज में बोला, "तू भी मेरा उपहास उड़ा, बहुत अच्छा! दुष्टों, होश में आओ, चेतो मूर्खो। मैंने ही आरुणी को तुम लोगों के पास भेजा था।"

भीड़ में हलचल हुई। एक अन्य शिष्य तृष्णाहीन हाथ जोड़कर बोला, "हे नाथ देवाधि देव, कृपा कर उपहास न करो। हम पागल हो जाएंगे स्वामी।"

सिद्ध का प्रेत क्रोध में भभका, "रे दुष्ट! मैं उपहास कर रहा हूं तुम लोगों के साथ या तुम कर रहे हो मेरे साथ। याद रख तृष्णाहीन, तेरे यकृत में घुसकर तेरा रक्त पी जाऊंगा। तेरे वृक्कों का आहार करूंगा दुष्ट। कर और अभिनय कर।"

एक भयभीत चीत्कार के साथ तृष्णाहीन नीचे बैठ गया।

तीसरा प्रमुख शिष्य तृण हाथ जोड़कर खड़ा हुआ। इस समय चुप रहने के मायने थे शिष्य मंडली को यह जताना कि वह मोक्षवासी स्वामी से वार्ता करने का अधिकारी नही है। अपने शब्दों को ऐसा बनाते हुए कि सिद्ध कुपित न हो वह बहुत सोच-समझ कर बोला, "क्षमा करें देव। आपका सेवक तृण और शिष्य मंडली अत्यंत कृतार्थ हुई कि आपने मोक्ष में भी हमें याद रखा और हमें दर्शन देने आए। प्रभु, अब उपदेश दीजिए। मार्ग प्रशस्त करिए।"

"करूं?" सिद्ध का प्रेत बोला, "एक तिहाई क्षिप्रा में कूदकर मर जाओ, एक तिहाई पर्वतों से कूद पड़ो और एक तिहाई विविध उपायों से प्राण तज दो।"

शिष्यों में फिर एक ठहाका गूंजा, "आज प्रभु विनोद-मुद्रा में हैं। आज

सीधे मुंह बात ही नहीं कर रहे है" एक और प्रमुख शिष्य पंक बोला। इस बार पंक खड़ा हुआ, "प्रभु, विनोद छोड़िए हम शिष्यो पर दया कीजिए। आश्रम की इतनी विशाल सपत्ति को देख कर, प्रभु, कुछ दुष्टो की आंखें इस पर लग गई हैं और क्या कहूं प्रभु हम लोगों मे कुछ का हृदय आपके जाते ही लोभ ग्रस्त हो गया। प्रभु, इस हजारो एकड़ भूमि और स्वर्ण संपदा का कैसे बटवारा किया जाए, नाथ ! आप ही कर जाइए।"

"अच्छा तो दुष्टो बटवारा करना है यह तो निश्चय कर ही चुके हो तुम। बहुत अच्छा। यह तो तुम में बटनी ही चाहिए नास्तिको। इसीलिए मैंने इसे इकट्ठा किया होगा। अरे नीचो यह संपत्ति आश्रम की है। यह सब क्या देख रहा हूं मैं ? मेरे जीते जी" ···तभी सिद्ध का प्रेत रुक गया। अरे मैं तो मर चुका हूं। एक ठंडी भावहीनता ने आकर फिर उसके हृदय को जकड़ लिया। एक धन्यवाद उसके हृदय से अपने इन शिष्यो के प्रति निकला। इनके कोलाहल मे आकर वह यही भूल गया था कि वह एक प्रेत है।

सिद्ध पर आई इस अकस्मात् गंभीरता को सबने महसूस किया। पूरी सभा ऐसे बंध गई मानो किसी ने उन्हे बुरी खबर सुनाई हो।

सिद्ध का प्रेत अब अपनी ठंडी निस्पंद प्रेतीय आवाज मे बोल रहा था। "साष्टांग, अष्टांग, तृष्णाहीन, तृण, पंक तथा अन्य समस्त शिष्यो ! मैं सचमुच संकट में हूं और तुम सबसे सहायता मांगने आया हूं। बिना तुम्हारे सहयोग के मैं इस संकट से उभर नहीं पाऊंगा। मेरी साधना अपूर्ण रह गई। मैंने जीवन-भर प्रयत्न किया कि माया की शक्ति का विरोध न करूं। बिना उसका विरोध किए माया मे रमा रहूं जिससे वह मेरा विरोध करना छोड दे और मुझे भी अन्य काम, क्रोध मे लिप्त सांसारियो जैसा समझ ले। उसकी इतनी विपुल संपदा को मैं ईश्वरीय मार्ग मे लगाना चाहता था। एक क्षण को भी मैं नही भूला उस सत् को जो हमारी आत्मा मे प्रज्वलित है। अहंकार करते हुए भी मैं अहंकार विहीन रहा था। रमण करते हुए भी मैं रमणहीन रहा। परतु मेरी साधना मे मुझसे कोई भूल हो गई जिससे मोहनीय कर्मों का मुझे बंध हुआ और मैं जीते जी स्वर्ग पहुंचने की इच्छा के वशीभूत हो गया। उसी काम में बर्फ की चट्टान से दबकर मेरी मृत्यु हो गई और मैं प्रेत बना।" प्रेत की आंखें सूनी और विशाल थी और उनमे हजारों-हजारों वर्षों की वेदना मुखर थी।

शिष्यों को अब सदेह नही रहा था कि उनका गुरु प्रेत बन चुका था। सिद्ध की शिष्या वैतरणी की आखो मे आंसू भर आए थे। तृण भी रो रहा था। पंक आगे बढ़ा, "स्वामी आज्ञा दीजिए। आपकी मुक्ति का जो भी उपाय हो बताइए। हम आपका तर्पण करेंगे। ब्रह्म भोज करेंगे। आश्रम में संपत्ति विपुल है। हम एक सहस्र गौओं के सींग स्वर्णमंडित कर दान करेंगे।"

प्रेत के चेहरे पर एक फीकी, डरावनी, प्रेतीली मुस्कान आई, "रे पंक। तू निरा मूर्ख रहा। मुक्ति के साधन यह नही है। तुम मेरी मुक्ति चाहते हो तो मेरे प्रति अपने श्रद्धा और विश्वास को तज दो। सत्य को ग्रहण करो। यह जान लो कि मैं भटक गया। मेरे जीवन से यही शिक्षा लो। मेरे प्रति करुणा रखो। सारी मुक्ति, विश्वास और श्रद्धा प्रभु के चरणों मे समर्पित कर दो और मेरी इस मूर्ति को जिसे सजाकर तुमने मंदिर में प्रतिष्ठित कर दिया है इसे क्षिप्रा में विसर्जित कर दो। तुम्हारा विश्वास मुझे जकड़े हुए है।"

"ऐसा ही होगा प्रभु।" शिष्यों ने एक मत होकर कहा।

"आरुणी को अपना आचार्य मान यह सारी संपदा इस महान ऋषि के चरणों मे समर्पित कर दो।"

"यह आप क्या कर रहे हैं आर्य।" आरुणी आगे बढा। "आर्य नही प्रेत।" प्रेत फिर वही मुस्कराहट मुस्कराया।

"नही।" आरुणी बोला, "जिस उलझन से आप निकल रहे है उसमें मुझे क्यों बाधना चाहते हैं।"

"क्योंकि तुम ज्ञानी हो, तुम नही जानते तुम आत्मा की इस यात्रा में किन शिखरों पर पहुंच गए हो। तुम इस संपदा का धर्मपूर्वक उपयोग करोगे। इससे जगत का कल्याण होगा।"

"देव! मैं आपका ऋणी हूं क्योंकि आपके माध्यम से प्रभु ने मुझे जीवन के बड़े कठिन समय मे मार्ग दिखाया था मैं आपको रुष्ट नही कर सकता।"

धूमिल, नतनयन, तृष्णाहीन, साष्टांग आदि शिष्यों मे हलचल हुई। वे इस नए मोड़ से चिंतित हो रहे थे।

आरुणी एक क्षण रुककर आगे बोला, "सिद्धवर यदि उस उपकार का बदला मुझे भटका कर ही चुकाया जा सकता है तो…।"

प्रेत जा चुका था। आरुणी पुकारता रहा, "सिद्ध क्षेमनिधि ! सिद्ध

क्षेमनिधि।" परन्तु रात्रि के वक्ष पर सोती पूस की चांदनी मौन थी।

शिष्य सिद्ध की मूर्ति को लेजाकर क्षिप्रा में डुबा आए। उसके बाद वे आरुणी के पास आए, "देव आसन ग्रहण कीजिए।"

"कदापि नहीं।" आरुणी दृढ़ता के साथ बोला।

"मगर यह मृत आचार्य की आज्ञा है। उनकी आत्मा को दुःख होगा।"

"नहीं पक।" आरुणी बोला, "मेरे लिए तुम्हारे आश्रम का आसन व्यर्थ है। यह तुम्हारे और मेरे दोनों के मार्ग मे बाधक है। सिद्ध क्षेमनिधि का मार्ग न कभी मेरा था-न मेरा है। मैं तुम लोगों की उस साधना को सफल नहीं करा सकता जो वे करा रहे थे। और फिर मैं सौगंध खा चुका हूं सभी वंशों, जातियों और शास्त्रों से संबंध विच्छेद करने की। मुझे तूफान में तिनके इकट्ठे करके नया नीड़ बनाना है।"

तृष्णाहीन और साष्टांग ने भीड़ को समझाया। आचार्य आरुणी को धर्म संकट मे डालना उचित नहीं। उन्होने सिद्ध गुरु को वचन नहीं दिया था। उससे पहले ही वे अंतर्धान हो गए थे। भीड़ ने इस समस्या पर विचार करने को तीन दिन का समय मांगा और चाहा कि तब तक आचार्य आरुणी आश्रम न छोड़ें।

सिद्ध का प्रेत अपनी मूर्ति के क्षिप्रा मे विसर्जन तक वहीं रहा। इसके बाद वह कुछ ही क्षणों मे हिमालय पहुंच गया। बर्फ गिर रही थी और प्रेत विश्राम करना चाहता था। उसके कपड़ों और सिर पर गिर-गिर कर बर्फ जम गई थी। वह कुछ देर चुपचाप लेटकर आरुणी के इनकार पर मनन करना चाहता था। उसे एक पुराना लकड़ी का महल दिखाई दिया जो कभी राजप्रासाद रहा था। आज बर्फ उसकी अंधेरी खिड़कियों से टकरा रही थी। सिद्ध का प्रेत उसी मे घुस गया। जैसे ही वह भीतर गया कुछ प्रेत बालक शहतीरों से छत मे लगी बल्लियों से कूदकर किलकिलाते हुए उसके कंधों पर बंदरों की तरह आ गिरे और उसके वस्त्रों और बालों से बर्फ चूंट-चूंट कर खाने लगे। एक प्रेतीय किलकिलाहट भवन में गूंज रही थी। कुछ प्रेत बच्चे खूंटियो पर, रस्सियों पर, कुछ पर्दों पर झूल रहे थे।

"हटो, हटो नास्तिको।" झुंझलाता हुआ सिद्ध आगे बढ़ा। सामने एक द्वार था जो आधा खुला था और वहां उसे एक शैय्या दीख रही थी। दो एक प्रेत बालक उसके कंधों से छिटक कर गिर पड़े।

"माई। माई।" के शोर और रुदन से गुफा भर गई।

"क्या है रे ? कौन है ?" एक अर्धनग्न प्रेतनी उसी कमरे से बाहर आई। "क्या हुआ ?"

"अरे स्वामी।" उसे पास से देख प्रेतनी के मुख से एक चीख निकली। सिद्ध ने उस पर ध्यान नहीं दिया, "मैं स्वर्णमयी हूं देव ! आपकी प्रेयसी-शिष्या। गत वर्ष क्षिप्रा मे नहाते हुए मुझे कालमुख नामक ग्रह ने निगल लिया था। अहोभाग्य नाथ जो आप यहां पधारे।" वह एक चपल सुंदरी की तरह उसे चितवन से देख रही थी। शायद उसे पता नही था कि मानवी भावों और स्पन्दनो के अभाव मे वह अपनी इन क्रियाओं से और भी कुरूप लग रही थी। उसकी अर्ध-नग्न देह श्वेत बर्फ की तरह कठोर और ठंडी थी। सिद्ध का प्रेत उसके प्रति घृणा से भर उठा, "और ये सब कौन है ! प्रेत बच्चे ? ये सब तुम्हारे हैं ! क्या प्रेतो के भी बच्चे होते हैं ?"

"हां नाथ ! ये मेरे बच्चे है। तुमने मेरी आत्मा को गर्भित किया था। तुमने मुझे बहुत से झूठ दिए थे। तुमने बहुत से गर्व-भरे असत्य पूर्ण वाक्य मुझ से कहे थे जिन पर मैंने विश्वास किया था। वे ही तुम्हारे विचार यहां आकर इन अनेक शिशुओं के रूप मे मेरी आत्मा से जन्मे है।" उसे चुप देख वह हसी, "अच्छा ही हुआ नाथ ! अन्यथा मुझे बहुत अकेला जीवन बिताना पड़ता। आपने यह साथ तो दिया शिशुओं का।"

कुछ देर पहले जो घृणा क्षेमनिधि के मन मे जगी थी एकदम दूर हो गई। कितनी क्षमा है स्वर्णमयी मे। मैंने उसकी आत्मा को झूठ दिए और उसे प्रेत योनि मिली फिर भी उसे मुझसे घृणा नही है।

वह उसे उस कमरे मे ले गई और वहां कोमल शैय्या पर लिटा दिया। फिर उसे मदिरा का एक पात्र दिया। "नाथ ! इस महल में एक तहखाना है जिसमें न जाने कितनी शताब्दियो पहले की रखी मदिरा है। चलो स्वामी ! जीवन पर्यन्त यह समाप्त होने वाली नही है। शताब्दियों तक इसे मनुष्य ने छुआ नहीं है। इसमे पृथ्वी की, वनस्पतियो की, बर्फ की, वसन्त आदि ऋतुओं की न जाने किस-किसकी गंध रच गई है।"

सचमुच क्षेमनिधि की चितायें, उलझनें, थकान एक ही पात्र पीकर दूर हो गई। स्वर्णमयी उसके लिए नृत्य करने लगी। उसके नृत्य में न ताल थी न लय।

आत्मा है। या फिर ये प्रेतीय ताल और सुर थे जिनका वह अभी अभ्यस्त नहीं हो पाया था। उसे दया आई स्वर्णमयी पर। वह भरपूर यौवन में मर गई थी। कभी उसकी सुंदरता पर राजा का हृदय भी डोल गया था। और केवल सिद्ध के भय से वह उसे प्राप्त नहीं कर पाया था। सिद्ध का प्रेत आनंद निमग्न हो गया। उसने सोचा यह प्रेतीय जीवन भी बुरा नहीं है। इसके भी कुछ अपने गुण हैं। वह व्यर्थ प्रेत बनने ही घबरा गया था।

तभी एक भयानक आकृति वाले युवा प्रेत ने दरवाजे से झांका और स्वर्णमयी का नृत्य रुक गया। स्वर्णमयी उसे छोड़कर चली गई।

वहां एक वृद्ध डाकिनि और तीन लंबे प्रेत आए, "छि: ! छि: ! कौन दुष्ट है ये। इसके चाम-हाड़ उठाकर बाहर फेंको।" इससे पहले कि क्षेमनिधि विरोध करे उन तीनों ने घसीट कर उसे बाहर बर्फ में फेंक दिया। बच्चे बाहर निकल तालियां बजाने लगे। वृद्ध डाकिनि उन बच्चों की तरह चपलता के साथ हंसने और नाचने लगी और अश्लील इशारे करने लगी।

सिद्ध का प्रेत क्रोध से आग बबूला हो गया। "दुष्टात्माओं ! दुराकृतियों ! ठहरो, मैं तुम्हें बताता हूं मैं कौन हूं। मैं तुम्हें अभी भस्म करता हूं चरित्रहीनों। मैं सिद्धि क्षेमनिधि हूं। मेरे तपोवन तक तुम जैसों की परछाई भी नहीं पहुंच सकती थी। मैं सिद्धि धारी हू। पापात्माओं ! अब तुम्हारे प्राण लेकर ही मेरे क्रोध की ज्वाला शांत होगी।"

"अहंकारी सिद्ध, तू मूर्ख है। तब तू मानव था, अब तू प्रेत है। तेरी सिद्धियां हम प्रेतों पर काम नहीं करेंगी, कुत्सित कामी। तू इतना भी नहीं जानता ?" और उन्होंने मिलकर उसके मुंह पर थूक दिया। एक-एक बच्चा आया और उसके मुंह पर थूक कर चला गया। क्षेमनिधि ने अपनी सिद्धियों का प्रयोग किया, मगर सब व्यर्थ गया। एक भयानक स्वप्न की तरह यह सब होता रहा और वह असहाय पड़ा देखता रहा।

सब चले गए और सिद्ध का प्रेत अकेला पड़ा बर्फ पर सिसकता रहा। काफी देर इसी तरह पड़े-पड़े सिसकते बीत गई। तब एक आवाज उसके भीतर उठी, "उठ मूर्ख यह तेरी मुक्ति का क्षण है।" सिद्ध का प्रेत उठ खड़ा हुआ। अवाक् वह दिशाओं में घूर रहा था। धीरे-धीरे उसकी बुद्धि ने काम करना शुरू किया

और तब ईश्वर की अनुकम्पा को समझ कर उसकी शून्य भरी आंखों से अनवरत आसुओं की धार वह चली। "धन्यवाद है प्रभु !" एक बच्चे की तरह सिसकियों से रुंधे कंठ से सिद्ध रुक-रुक कर बोला, 'मुझे प्रेत योनि मे रखकर भी तुम नही भूले देवता ! मैं सिद्धियों के अंहकार मे तुम्हे भूल गया प्रभु मेरे ! मैंने जीवन भर सिद्धियो को वश में रखा और अंत में मैं ही इनके द्वारा स्वयं छल मे आ गया। मुझे विश्वास था कि सिद्धियां मुझे स्वर्ग तक ले जायेंगी। वहां मैं निर्विघ्न तुम्हारी उपासना करूंगा। वहां पृथ्वी की चितायें और अवरोध नही होगे। परंतु यात्रा मेरी आत्मा को अकेले करनी थी। सिद्धियों की सहायता के बिना, ये सिद्धियां तो प्रेत लोक में भी काम न दे सकी।

सिद्ध बहुत कुछ कहना चाह रहा था पर शब्दों में वह बल नही था। कुछ देर चुप खड़े-खड़े अश्रुधारा निकलती रही और उसका हृदय एक आहत पक्षी की तरह फड़फड़ाता रहा। एक अनिर्वचनीय सुख उसे हृदय की इस फडफडाहट में मिल रहा था। उसे लगा कि न जाने कितने वर्षो से उसका हृदय मचल रहा था। आज हृदय को शब्दों की भी जरूरत नही थी। जैसे मचल-मचल कर किसी प्राचीन भाषा विहीन युग के प्राणी की तरह उसका हृदय ईश्वर से अपने दुःखों का, भटक और पापों का निवेदन कर रहा था। ईश्वर की निस्सीम दयालुता का उसे भान हुआ। प्रेत योनि मे भी प्रभु ने उसकी ज्ञान साधना को जारी रखा था। कैसी अनोखी दया थी प्रभु की। उसका हृदय एक शिकायत मे मचला, "मैंने पूरे जीवन तेरी अथक साधना की। एक जरा से मेरे दम्भ पर तूने मुझे प्रेतयोनि दे दी।" उसकी आंखें फिर आंसुओं से एक बच्चे की आखों की तरह लबालब भरी थी, "हम तो बच्चे हैं और तू ज्ञानी। मेरी उंगली पकड़ कर तो कहते पिता···" उसका कंठ फिर भर आया और उंगली से एक ओर इशारा करते हुए उसने वाक्य पूरा किया, "कि मार्ग वह है। मैं न चलता तो कहते···यह क्या हुआ। हम अज्ञानी भटक गए और तूने सजा दे दी···"

एक तेज बिजली कड़की। दिशाओं का सीना जैसे एक तेज चमकीली कटार ने चीर दिया। सिद्ध की प्रेत योनि छूट गई थी। जहां सिद्ध खड़ा था वहां वर्फ के गाले पड रहे थे, मानो देवता फूल बरसा रहे हों। अब भी रह-रह कर बिजली कड़क रही थी। मानो सिद्ध के विलाप ने करुणाकर की रहमत को जगा दिया था। कर्म बंधनों के नियम उसकी दया को नही बांध सकते। प्रेम, मानो उसकी दृष्टि में

मृत्यु, जन्म, कर्म, पाप-पुण्य के नियमों से ऊपर है। सिद्ध की आत्मा ने पहली बार प्रेम के आंसू गिराए थे, जिनके बिना इतना स्पष्ट, सुलझा हुआ ज्ञान भी उसमें अहंकार को पनपाता रहा था तब भी जब वह अपने अहंकार को ढूंढ-ढूंढ कर अभिव्यक्ति के माध्यम से नष्ट कर रहा था। उसी प्रेम का मान रखने पिता दिशाओं को चीर उसकी आत्मा में स्वय मानो आकर समा गया और सिद्ध का व्यक्तित्व उसमे लीन हो गया।

× × ×

"सब अपना-अपना पाठ याद रखना," पंक बोला, "मित्र नतनयन, सखा तृण, बन्धु तृष्णाहीन और मित्र साष्टांग, अष्टांग, आप सब अपना-अपना पाठ खूब याद रखना। मैं गुरु का प्रेत बनूंगा चांदनी रात मे वट-वृक्ष के नीचे होऊंगा। मगर मैं बोलूंगा नही। मित्र तृण आवाज की नकल चतुराई से करता है। तृण पेड़ पर चढा होगा। बोलेगा वही मेरी आकृति गुरुजी से मिलती है इसलिए गुरु बनूंगा। बाकी सब यमदूत बनेंगे जो गुरु को नोचेंगे। तब तृण गुरु की आवाज मे बोलेगा कि मैं "आश्रम को अपने इन-इन शिष्यों में बराबर बांटता हूं और इनकी सेवा के प्रति न्याय करता हूं। अब मुझे छोड़ दो यमदूतों।" मगर शिष्यों के नाम में गलती न कर देना। हम सब का नाम लेना और किसी का नही।"

"और सबसे पहले यमदूत गायब होगे।" तृण बोला।

"और तब गुरुजी हम सबको सम्बोधित करके कहेंगे—प्रिय शिष्यो मैंने तुम सबके सामने यमदूतो को वचन दिया है। इसे मेरी आज्ञा मानकर सम्पत्ति का बंटवारा इसी प्रकार करना। जो भी इसमें अड़चन डालेगा उसे अतिशीघ्र मैं स्वयं आकर अपने लोक में ले जाऊंगा। उसे शिक्षा देनी होगी मुझे प्रेत लोक मे भी।" तृष्णाहीन बोला।

"मगर एक बात याद रखना," नतनयन ने कहा, "आश्रम वासी गुरुजी के बहुत निकट न जाने पाएं वरना भेद खुल जाएगा।"

"यह कैसे होगा ?" कई कंठ एक साथ बोले। कुछ सोचकर पंक बोला, "देखो जब यमदूतों का अट्टहास और गुरुजी के प्रेत का आर्तनाद सुनकर आश्रम-वासी बाहर निकलेंगे तो स्वयं गुरुजी यानि तृण कहेगा कि शिष्यो, आगे मत बढ़ना वहीं रुके रहो। तीस हाथ की दूरी पर खड़े रहो। वही तक की कुण्डली मे यमदूतों का असर है। तुममें जो भी तीस हाथ की दूरी नहीं रखेगा उसे ये खा जायेंगे। वही रुक जाओ और ध्यान से मेरी बात सुनो।"

तृष्णाहीन मदिरा के दो पात्र पीकर गंभीर हो गया। वह बोला, "तृण मित्र सब कुछ तुम पर निर्भर है। याद रखना नकल में भूल न हो वरना तो सारा खेल बिगड़ जाएगा।"

"तुम चिंता मत करो मित्र," तृण बोला, "मैं बचपन से गुरुजी की आवाज की नकल करके तुम सबका मनोरंजन करता आया हूं। आश्रमवासी कितनी ही बार मेरी आवाज के धोखे में आ चुके हैं। स्वयं गुरुजी मेरे इस चातुर्यपर एक बार बहुत प्रसन्न हुए थे।"

इस प्रसंग को याद कर सबको पूरा विश्वास हो गया कि तृण से नकल में गलती नहीं हो सकती। इसके साथ उनकी चितायें दूर हो गईं। उन्हें विश्वास हो गया कि सम्पत्ति उन्हें मिल ही जाएगी और योजना सफल होगी। अत. सब हंसी-मजाक के मूड में आ गए। देवी वैतरणी सबको मदिरा के पात्र भर-भर कर देने लगी।

तभी एक विचित्र घटना क्षिप्रा के तट पर क्षेमनिधि के आश्रम में घटी। एक तेज बिजली दिशाओं को वेधती कड़की और आश्रम का वह हिस्सा जहां क्षेमनिधि रहता था टूट गया। उसकी दीवारें एक शोर के साथ गिर गईं। उस समय आश्रम से दूर वन में गुप्त मंत्रणा के लिए इकट्ठे हुए पंक, तृण, तृष्णाहीन, अष्टांग, धूमिल, नतनयन और वैतरणी ने भी सुना।

"क्या कोई भूचाल आ गया यारो?" तृण बोला। फिर उसने आवाज लगाई, "सुंदरी वैतरणी मेरा पात्र भरो," वैतरणी इठलाती हुई आई और अपने कटाक्षों से तृण को तृण सदृश्य चीरते हुए उसका पात्र भरने लगी।

"गुरु मेरे वृकों का आहार करेगा देखा," तृण बोला, "सुनो अपनी इन्हीं पाताली कुचेष्टाओं के कारण गुरु प्रेत बना।"

"डरने की जरूरत नहीं ब्रह्मचारी तृण" अष्टांग बोला, "गुरु कुछ नहीं

बिगाड़ सकता। मैं तुम्हारे साथ हूं।"

पक बोला, "अच्छा पहले एक गीत सुनाओ तृण फिर काम की बात आगे बढ़े। पात्र भरो दासियों।" तीन अनार्य बालायें मदिरा से भरे पात्र लेकर आईं।

उनमें से एक का पंक ने आलिंगन किया और उसे पास बैठाता हुआ बोला, "मृगनयनी तुम यहां बैठो। मैं आचार्य की सम्पत्ति का स्वामी बनते ही तुम्हें अपनी प्रधान सहचरी बनाऊंगा, अनार्य से आर्य बनाऊंगा।"

"मगर उत्तराधिकारी मैं हूं।" तृष्णाहीन सीना ठोकता हुआ बोला। उसके साथ धूमिल और नतनयन भी दावेदार बनकर आगे बढ़े।

तृण बीच में उभरा, "अरे भाई झगड़ा छोड़ो। अभी तो तय किया कि सम्पत्ति हम सबमें बराबर-बराबर बंटेगी। हम सब अपने-अपने आश्रम थोड़ी-थोड़ी दूर पर बनायेंगे जिससे सम्पर्क भी बना रहे और स्वतंत्र साधना भी होती रहे। देवी वैतरणी अपनी स्वेच्छा से मेरे साथ रहेगी। इसलिए हम दोनों का आश्रम जरा बड़ा होगा क्योंकि दोनों की सम्पत्ति होगी।"

"खैर वह बाद में देख लेंगे," वैतरणी बोली, "अभी तो तुम गाना सुनाओ।"

तृण : "मैं सोता रहा दिन भर
तब आया एक खटमल
काटता मुझे भला कैसे
जागा था वह रात भर···"

सब हंसने लगे। वाह! वाह! और उसकी आवाज में आवाज मिलाकर गाने लगे। मदिरा के कारण उनके गले बहुत मोटे हो गए थे।

तृण : "डोलता, लड़खड़ाता बेचारा खटमल
गिर पड़ा थका हारा गश खाकर
और मैं सोता रहा मैं सोता रहा···"

सब मोटे गले से गाने लगे, "मैं सोता रहा, मैं सोता रहा, मैं सोता रहा, मैं सोता रहा···"

तभी वहां दौड़ा-दौड़ा साष्टांग आया, "अरे गजब हो गया मायावियों अरे

गजब।" वह बहुत डरा हुआ था। "तुम्हारे काले कारनामे गुरुजी ने सुन लिए। बिजली गिर गई। आश्रम पर गुरुजी वाला हिस्सा गिर गया। उसी में सारे हीरे मोती, सोना, चांदी भी दब गया हाये रे!" वह रोने लगा। "अब मेरे हिस्से का क्या होगा।"

"अबे चुप।" पंक गरजा, "एक तो दुष्ट ने दुःसंवाद दिया। चलो भाई चलो देखते हैं।"

□

उपसंहार

आरुणी को लगा अब उसे अंधेरों का भय नहीं रहा। वह भय जो उसके पिता ने उसके हृदय में अंधकार के प्रति जगा दिया था वह सिद्ध क्षेमनिधि के प्रेत से मिलकर दूर हो गया था। अक्सर हम केवल अपरिचय और दूरी के कारण ही किसी चीज से डरते हैं। पास आ जाने पर उसकी सीमाएं दीखने लगती हैं। वह डरावनी चीज भी कितनी असहाय है, हमें लगने लगता है। और फिर यहां तो एक आत्मा थी। यह विधि का खेल ही था कि इतनी साहसी आत्मा भी अंधेरों से डरती रही थी। शायद शैशव की कोई घड़ी आत्मा के ऊपर रुक-गई थी। कोइ गिरह पड़ गई थी बचपन में।

बहुत अनोखे अंधेरे रोहिणी के प्यार ने दिखाए थे उसे और उसकी आत्मा निःशंक बढ़ती गई थी बिना किसी चेष्टा के। एक के बाद एक उसने देखा था आत्मा के ये अंधेरे अस्तित्व विहीन थे। ये असत् थे जिनसे आत्मा पुनर्जन्म लेती है परंतु अभी कोई कमी थी। आत्मा का यह ज्ञान मनस में पूरी तरह नहीं उतर पाया था। मनस अब भी अंधेरों से डरता था। परंतु क्षेमनिधि को देखकर मनस ने जान लिया था कि उसका सबसे बड़ा अंधेरा कितना भयहीन था। इस अनुभव के बाद भय आरुणी की आत्मा से चला गया पूरी तरह। यह एक बड़ी आत्मिक विजय थी जिसके मूल्य से वह अपरिचित नहीं था।

इस भय के साथ एक और विचित्र घटना हुई। उसकी मंजरी के प्रति जगी गुप्त चाहत तिरोहित हो गई। उसके मन के नील गगन को बचपन से कलुषित करते ये घने गुप्त बादल अचानक उजले हो गए। यह एक और तिलस्म था आत्मा की राह में जिसे उसने तोड़ लिया था। मन पर पड़े इन जकड़ते अंधेरों के हटते ही

उसे लगा कि वह अनर्गल था। उसकी आत्मा निष्कलंक थी। पहली बार उसने अपनी आत्मा को इतना सादा, इतना पवित्र महसूस किया था। आनन्द अतिरेक में उसके आंसू निकल आए। प्रभु ने उसकी ग्रुब सुनी थी।

आश्रम में सभी शिष्य रात से मलबा हटाने में लगे थे। बारह बजे थे। रोहिणी थककर प्रगाढ निद्रा मे सो रही थी। आरुणी उठा और सर्दियों की उस अंधेरी रात को चीरता हुआ क्षिप्रा नदी के किनारे पहुचा और वहा सारे वस्त्र उतार नदी में घुस गया। वस्त्र उतारते ही उसके हृदय मे मानो चद्रोदय हुआ—"तत् त्वमसि।" उसके हृदय से यह बोल उठे। इस मंत्र को उसने जीवन मे असंख्य बार दोहराया था। पर आज जैसे पहली बार इसके अर्थ वह समझ रहा था। उसके हृदय से फिर निकला—"तत् त्वमसि" तू वो है। मैं वो हूं मैं ब्रह्म हू" आनन्दातिरेक से बोला। उसके हृदय मे एक तीव्र गुदगुदी हुई, उसे लगा अंधेरा बदल गया। उसे लगा अधेरा कुछ नही था असत् का एक रूप था। अंधेरा उसकी आत्मा के द्वारा पराजित ही नहीं हुआ था। हमेशा-हमेशा के लिए उसके विचारों से जा चुका था।

केश बांधकर वस्त्र पहन वह एक चट्टान पर बैठ गया। एक गहरी शांति उस की आत्मा मे ऊपर से जैसे उतरने लगी और उसके साथ नीचे से आत्मा न जाने किन जन्मो की नींद तोड़ने लगी। कितनी ही बार उसने जंभाई अंगडाई ली। उसे लगा यह शरीर नही स्वयं आत्मा ले रही थी।

सुबह होते-होते उसकी जटाए ओस से भीगकर ऐसी लग रही थी मानो मोतियो से बना कोई केश जाल उसने ओढ रखा हो। यह समाधि थी या तप वह नही जानता था। न जाने कितने विचार एक शृंखला में उसके सामने आए और एक-दूसरे को खोलते चले गए। सुबह की प्रथम किरणो को जब उसने भीगे वृक्षों के झुरमुटों से छनकर गीली मिट्टी और घास पर गिरते देखा तो उसे लगा कि ऐसा ही कोई सहस्त्र किरणो का प्रकाश उसके हृदय के फर्श पर पड़ रहा था।

वह उठा। एक आनन्द निर्झर उसके हृदय से फूटकर मानो बह निकला था। उसे दिशा मिल गई थी। अब तक अंधा जीवन राह ढूंढ़ता रहा था। न जाने कितने वर्षों से यह क्रिया होती रही थी और अब अचानक उसे संघर्ष का फल मिल गया था। यह एक रात की तपस्या का फल नही था। तप तो जीवन-भर होता रहा था आज तो उसके फलने की बारी थी।

अभी भी शिष्य मलबा हटा रहे थे। रोहिणी जाग चुकी थी और अपनी वेणी मे फूल लगा रही थी। शिष्यों से विदा लेकर वह चल दिए। आज उसे किसी ने नहीं रोका था।

कुरुक्षेत्र में आरुणी का आश्रम बना। कुछ ही वर्षों मे देश-देश में उसकी ख्याति फैल गई। उस आश्रम में आर्य और अनार्य सब ही थे, स्त्रियां भी थी और पुरुष भी। यवन, मलेच्छ, हूण आदि विदेशी भी थे।

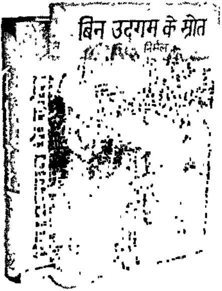
आश्रम के प्रधान ऋषियों में देवी रोहिणी थी। आतरिक ज्ञान से दीप्त उसका मुख मंडल वर्षों के स्पर्श से और भी लावण्यमय हो गया था। ज्ञान और मूर्खता दोनों का समन्वय ही तो प्रेम है। ईश्वर में ये सभी विरोध ज्ञान-अज्ञान, प्रकाश-अंधेरे खो जाते हैं। आरुणी ने रोहिणी से जाना था कि उसका अपना ज्ञान मूर्खता से वैर करता-करता कितना कठोर और मूर्ख हो गया था। इनके विरोध रोहिणी की आत्मा मे नहीं थे। इसलिए उसकी आत्मा प्रेमात्मा थी। वह चंद्रमा के समान थी। आरुणी की आत्मा ज्ञान-मार्ग पर चल कर सूर्य की तरह प्रखर तो हो गई थी परंतु उसे शांति नही मिली थी। रोहिणी के प्रेम में उसने जान लिया था आत्मा की यह प्रखरता तो उसकी एक शक्ति मात्र है। शक्तिमान तो कोई और है। सूर्य तो शक्ति है, शक्तिमान चंद्रमा है। वही अमृत का धाम है। और सभी रसों के अमृत के देवता वरुण है जो देवो मे सर्वप्रथम है। ऐसा ही आर्य ऋषि प्राचीन काल से कहते आए थे। परंतु जिस युग मे आरुणी का जन्म हुआ था उसमे आर्यों ने वरुण को प्रथम स्थान देना बंद कर दिया था। कुछ संघर्षों के बाद इंद्र देव की शक्ति को प्रथम स्थान दिया जाने लगा था। आरुणी ने रोहिणी के प्रेम मे पूर्वजों की इस भूल और संकीर्णता को पहचाना था। शक्ति को प्रथम स्थान सत्ता के लोभ का दंड था। यह पाप का फल था। जो जाति शक्ति को सर्वोपरि रखेगी वह विनाश को प्राप्त होगी। क्योंकि बिना शक्तिमान के शक्ति निरंकुश होकर भटक जाएगी। और शक्तिमान है अमृत, चंद्रमा। यही आदि ऋषियों ने सिखाया था।

आरुणी के आश्रम में आध्यात्मिक शक्तियां जगाने पर बल नही दिया जाता था। यहा सारा जोर जीवन को अमृत से सींचने की कला सीखने पर था। उस केंद्र को समझना था जो प्रभु का अंश है हममें और सभी मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियों को उसके अनुकूल अनुशासित करना था।

आरुणी का कहना था निर्वाण नारी और पुरुष को एक होने पर ही प्राप्त हो सकता है। अन्यथा नही। वह वासना जो उन्हे एकता का क्षणिक अनुभव देती है लीन हो जाती है प्रेम मे। यदि दो आत्माएं सच्ची हैं और तलवार की धार पर चलने को तैयार हैं तो वे लीन हो जाती हैं एक ऐसे रूप मे जिसमें प्रत्येक दोनों हैं। उस प्रेम का अभ्युदय उसकी चरमता नही है। उसकी सुबह आत्मिक पुनर्जन्म लेकर असंख्य रातो से वीरता के साथ जूझकर आती है। इन अंधेरों से शक्तियों की वह प्रेम निखरता जाता है और गहरा होता जाता है। एक दिन चमकता-चमकता, आत्मा के संघर्षों मे निखरता-निखरता वही निर्वाण हो जाता है। वह प्रेम जो दो आत्माओं में एक प्रेमात्मा बनकर जगा था अब सभी प्राणियों के प्रति जाग जाता है। सबमे मानो वही प्रेमात्मा जीने लगती है। यही ब्रह्म है।

प्रेम के ये जोगी हजारो की संख्या मे वर्षों के साथ आरुणी के आश्रम से निकले और हिमालय से कन्याकुमारी तक ही नही, हिंदूकुश के पार भी, चीन, लंका, कम्बोडिया, यूनान, रोम आदि देशो तक इस संवाद को ले गए। प्रेम के वह बीज जो उन्होंने मनुष्य सभ्यता के पूर्वार्द्ध में डाले थे कितने सशक्त रहे होंगे कि अनेकों नृसंश आततायियों, साम्राज्य लोलुपों, हिंसक वहशियों की तलवारों मे कटकर भी इंसान की गर्दन इस विश्वास मे आज भी उठी है कि एक दिन पृथ्वी पर प्रेम शासन करेगा।

□□



निर्मल का बहु विवादास्पद उपन्यास 'बिन उद्गम के स्रोत' (दो खण्डों में) मूल्य ४० रुपए

...जिसने मुझे विशेष छुग्रा है वह है कृति मे गर्भित वेग ग्रौर उल्लास। प्राणो के उद्‌गम से फूटती यह फुहार, यह उछाल, कडवे-मीठे जीवन के सभी ग्रनुभवों के प्रति एक-सा उन्मुक्त ग्रामन्त्रण ग्रौर ग्रालिगन, निश्चय ही निर्मल एक विरल वरदान है

—जैनेन्द्र कुमार

...लेकिन इतना तय है कि श्री निर्मल कुमार की यह कृति ग्राज के पूरे हिन्दी कथा-दौर से हट कर है। एक सर्वथा मौलिक कृतिकार-व्यक्तित्व, ग्रौर एक ग्रत्यन्त सुन्दर, संस्पर्शी संवेदनशील ग्रात्मा इस कृति के पीछे है। इसी कारण इसकी शैली ग्रौर शिल्प सर्वथा निराली है। बहुत लजी-टटकी, ग्रपूर्व ग्रात्मगन्धी भाषा है।

—वीरेन्द्र कुमार जैन,
सुप्रसिद्ध साहित्य कवि-कथाकार